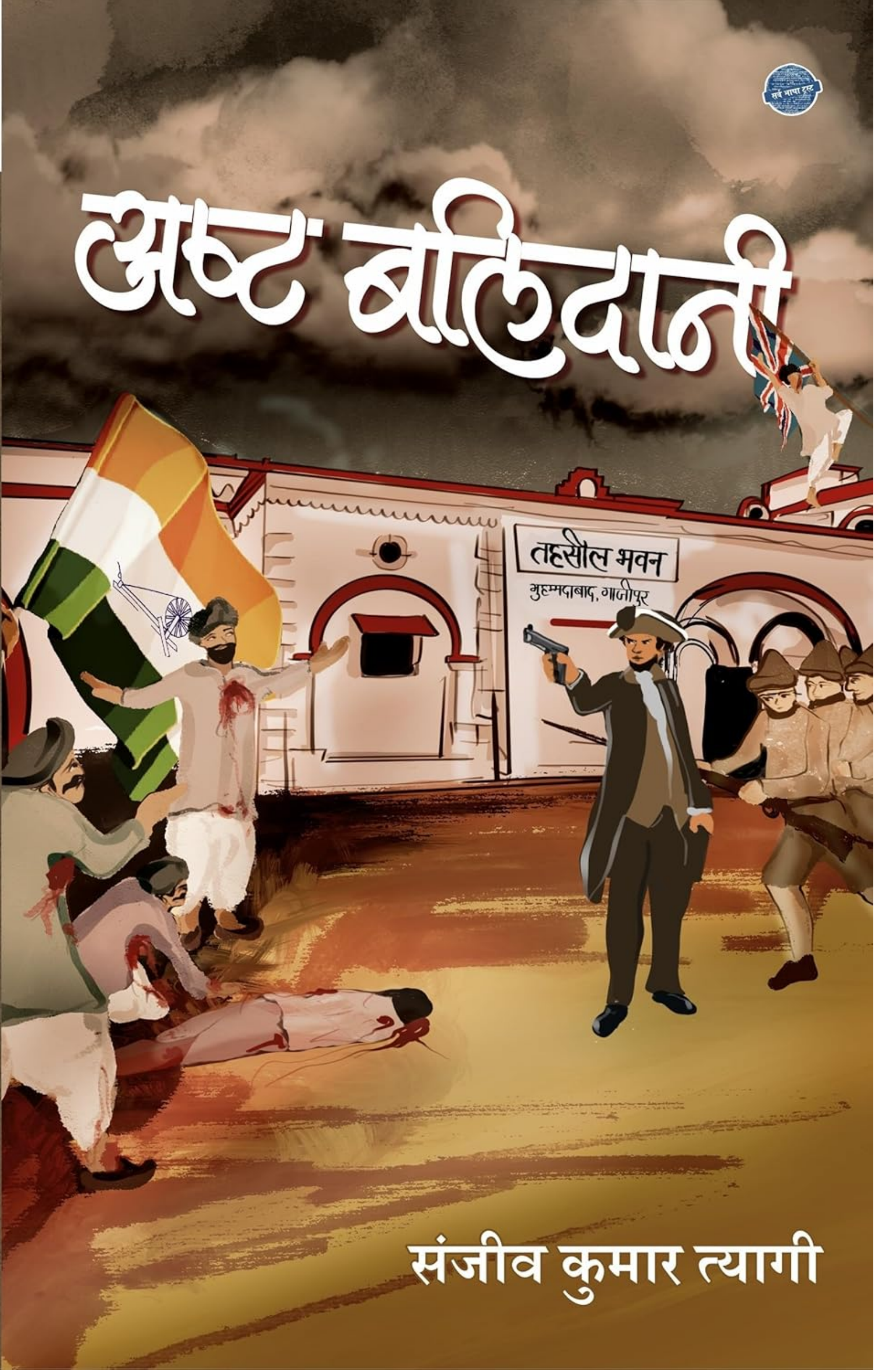

अष्ट बलिदानी
तहसील भवन
मुहम्मदाबाद, गाजीपुर
संजीव कुमार त्यागी

स्वाधीनता मनुष्य का चरम मूल्य है। इसके लिए मानव जाति ने जितनी कुर्बानियाँ दी हैं, शायद ही किसी दूसरे मूल्य के लिए दीं हों। स्वाधीनता के लिए उत्सर्ग करने वाले हर नायक को श्रद्धापूर्वक स्मरण किया जाना चाहिए। रामधारी सिंह 'दिनकर' लिखते हैं:-

जला अस्थियाँ बारी-बारी,
सुलगाई जिनने चिनगारी,
जो चढ़ गये मातृवेदी पर,
लिये बिना गरदन का मोल,
कलम, आज उनकी जय बोल।

इस काव्य में श्री संजीव कुमार त्यागी ने भारतीय स्वाधीनता संग्राम के कुछ अल्पख्यात नायकों को भावपूर्ण श्रद्धांजलि दी है। इन नायकों ने 18 अगस्त 1942 को जनपद गाजीपुर,उत्तर प्रदेश के मुहम्मदाबाद तहसील मुख्यालय पर यूनियन जैक उतार कर तिरंगा फहराने का प्रयास करते हुए मातृभूमि की वेदी पर आत्मोत्सर्ग किया था। यह घटना अत्यन्त मार्मिक है जिसे श्री त्यागी ने छन्दबद्ध किया है। श्री त्यागी में छन्द-रचना की प्रतिभा है और मुझे आशा है कि वे अपनी भावी-काव्य-रचना में भी इसका समुचित उपयोग करेंगे। उनके कृतज्ञता भाव और काव्य को पाठकों का स्नेह मिलना चाहिए।

- विश्वनाथ प्रसाद तिवारी



संजीव कुमार त्यागी

जन्मतिथि : 24.04.1986

पिता : श्री ब्रजेश कुमार राय

माता : श्रीमती मंजू राय

पता : ग्राम-लड्डूडीह, पोस्ट-गाँधीनगर, जिला-गाजीपुर (उ.प्र.)

शिक्षा : एम.ए., बी.एड.

प्रकाशित पुस्तक : ए सरकार! किसान हईं हम (भोजपुरी कविता संग्रह) और हाथी बिक गए एवं अन्य कहानियाँ (हिन्दी कहानी संग्रह)

सम्मान : उत्तर प्रदेश हिन्दुस्तानी एकेडमी, प्रयागराज द्वारा 'भिखारी ठाकुर सम्मान-2021' तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ द्वारा 'भिखारी ठाकुर सर्जना पुरस्कार-2021' से सम्मानित, महाराजा फतेह बहादुर साही स्मृति न्यास द्वारा 'साहित्य सम्मान-2022'

संप्रति : अध्यापक, जनता इण्टर कालेज, एट, जालौन (उ.प्र.)

मो. : 9919278009, 7355310387

अष्ट बलिदानी

(खंडकाव्य)

संजीव कुमार त्यागी

अष्ट बलिदानी

(खंडकाव्य)

संजीव कुमार त्यागी

सर्वभाषा प्रकाशन, नई दिल्ली

www.sarvbhasha.in

अष्ट बलिदानी (खंडकाव्य)
संजीव कुमार त्यागी
ISBN : 978-81-19208-19-7
मूल्य : ₹ 180.00/- (अजिल्द)
₹ 260.00/- (सजिल्द)
प्रथम संस्करण : 2024

प्रकाशक
सर्वभाषा प्रकाशन
J-49, Street No.-38, Rajapuri, Main Road
Uttam Nagar, New Delhi-110059
E-mail : sbtpublication@gmail.com
Website : www.sarvbhasha.in
Mob. : 011-3501-3521, +91 81786 95606

मुद्रक : आर. के. ऑफसेट प्रोसेस, दिल्ली

ASHTA-BALIDANI (KHANDAKAVYA)
by Sanjeev Kumar Tyagi
Price : ₹ 180.00/- (Paperback)
₹ 260.00/- (Hardback)

नाना जी

स्व. नागेन्द्र राय

की पावन

स्मृति को ...

शत्-शत् नमन

"शहीदानें वतन जिन्दाबाद"

१८ अगस्त सन् १९४२ ई. की संध्या, गान्धी जी के अंग्रेजों भारत छोड़ो का देशव्यापी जनान्दोलन। मुहम्मदाबाद (गाजीपुर) तहसील भवन पर तिरंगा झण्डा फहराने के लिये अमर शहीद डा. शिवपूजन राय के साथ अपार भीड़, कुछ चुने साहसी युवकों का हिरावल दस्ता का पूरब से तहसील भवन में प्रवेश। पुलिस हमारे भाई हैं का मर्मस्पर्शी नारा। उत्तर में गोलियों की बौछार तथा संगीनों की मार से बारामदे में भारत माँ की गोद में वीर गति प्राप्त करने वाले सपूतों का स्मृति पट :–

–: परिचय :–

नाम	पिता	ग्राम	आयु	शिक्षा
१- श्री ऋषेश्वर राय	श्री राजनारायण राय	शेरपुर,	२८ वर्ष	हाई स्कूल
२- ,, वंशनारायण राय	,, लालिता राय	,,	२१ ,,	बी. ए. सी.
३- ,, वशिष्ठनारायण राय	,, रघुपति राय	,,	२४ ,,	इण्टर
४- ,, वंशनारायण राय	,, जोगेन्द्रनाथ राय	,,	२० ,,	इण्टर भीडियर
५- ,, नारायण राय	,, भगेश्वर राय	,,	२८ ,,	बी. ए
६- ,, राजर. राय	,, उमाह राय	,,	१० ,,	हाई स्कूल
७- ,, रामबदन उपाध्याय	,, दीपनारायण उपा.	,,	१८ ,,	जू. हा.

अनुक्रम

प्रकाशकीय

ऐतिहासिक साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में यह सर्व मान्य है कि भारतीय स्वतंत्रता का प्रथम राष्ट्रवादी क्रांतिकारी आंदोलन बंगाल से उभरा परंतु यह ज्वाला सदा से मनुष्य के अंतर में सुलगती रही है। मनुष्य स्वभाव से स्वतंत्र होता है। जीवन-निर्वाह के लिए ब्रिटिश सरकार की नौकरी करने वाले मंगल पाण्डेय हों या घर-परिवार में उलझा सामान्य व्यक्ति, सभी स्वतंत्रत जीना चाहते हैं। भारत वर्षों तक परतंत्र रहा है और सबसे अधिक मुगलों तथा अंग्रेजों द्वारा प्रताड़ित किया गया। प्रताड़ना की चोट से भारतवंशियों की आत्मा झंकृत हुई और हजारों-लाखों लोग अपनी जान की परवाह किए बगैर ब्रिटिश गवर्मेण्ट से वर्षों तक दो-दो हाथ करने के लिए प्रेरित होते रहे; भारतीय स्वतंत्रता के संवाहक बने रहे। इतिहास के पन्नों में अंकित चमकते नायकों के अतिरिक्त अनेक ओझल सितारों ने देश की स्वतंत्रता के भाग्य को चमकाया है। उन सितारों पर अनेक कलमकारों ने कलम तोड़ी है।

श्री संजीव कुमार त्यागी जी मेरे प्रिय युवा साहित्यकारों में से एक हैं। वे विविध विधाओं में रचना करने में दक्ष कलमकार हैं। बात भोजपुरी कविता संग्रह ‘ए सरकार किसान हईं हम’ की हो या हिंदी कहानी संग्रह ‘और हाथी बिक गए एवं अन्य कहानियाँ’ की या अब ‘अष्ट बलिदानी’ खंडकाव्य की, वे अपनी प्रतिभा से पाठकों और साहित्य मर्मज्ञों को सायास अपनी उपस्थिति से अवगत करवा देते हैं।

स्वतंत्रता संग्राम की पृष्ठभूमि पर तैयार ‘अष्ट बलिदानी’ श्री संजीव कुमार त्यागी की श्रेष्ठ लेखनी का उदाहरण तो है ही ‘स्वतंत्रता के अमृत काल’ के लिए पवित्र प्रसाद भी है। मुझे प्रसन्नता के साथ गर्वानुभूति भी हो रही है कि ‘सर्व भाषा ट्रस्ट’ को यह अवसर मिला है कि भारतीय स्वतंत्रता के लिए स्वयं को न्योछावर करने वाले आठ रण-बाँकुरों के शौर्य की गाथा प्रकाशित करे। यह खंडकाव्य लोकप्रिय हो और संजीव जी की लेखनी श्रेष्ठतर रचना करती रहे, इसी शुभकामना के साथ बधाइयाँ।

प्रकाशक

सर्व भाषा ट्रस्ट

नमन तेज को, बल को

18 अगस्त सन 1942 की वह भयावन रात। घनघोर घटाओं से आच्छादित आसमान चीख-चीख कर रो रहा था। मूसलाधार वर्षा के साथ स्पर्धा करता तीव्र पवन दसों दिशाओं में भाँय-भाँय कर रहा था। रह-रहकर तड़पने वाली बिजली क्षण भर के लिए संपूर्ण भुवन में छाए घुप्प अंधेरे को रौशन कर देती थी और उस रोशनी में संसार के साथ पल भर के लिए चमक उठता था गाजीपुर जनपद की मुहम्मदाबाद तहसील का वह भवन, जिसका पूरा प्रांगण निश्चल मानव शरीरों से पटा हुआ था। क्षत-विक्षत मानव शरीर, कुछ मृत कुछ अचेत। अविरल बरसती बूँदें उन्हें नहला रही थीं। धो रही थीं उनके रक्त में डूबे वस्त्रों और अंगों को और धुल-धुल कर वह रक्त जल की धारा के साथ बहता माटी में मिलता जाता था। वह रक्त जिसका संबंध इस दुनिया में सबसे बड़ा माना जाता है, धरती में समाकर जगत को यह संदेश दे रहा था की सबसे बड़ा संबंध रक्त का नहीं बल्कि सबसे बड़ा संबंध माटी का होता है और उस संबंध के निर्वहन में जिस रक्त की बूँद-बूँद काम आ जाती है वह कृत-कृत्य हो जाता है, पूज्य हो जाता है। तहसील प्रांगण में धरती के सम्मान के लिए समर्पित उस रक्त से मेरा भी माटी का संबंध है और इसी संबंध ने मुझे प्रेरित किया कि मैं उस रक्त के साथ उस बलिदानी माटी को श्रद्धा सुमन अर्पित कर अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करूँ। यह कथा काव्य इसी प्रेरणा की परिणति है।

अष्ट बलिदानियों को जन्म देने वाली भूमि शेरपुर मेरी माता की भी जन्मभूमि है और मेरा जन्म भी ननिहाल में ही हुआ था। मेरी बाल्यावस्था की अधिकांश आयु इस गाँव के लोगों के बीच व्यतीत हुई है। स्वर्गीय जगदीश राय से, जो रिश्ते में मेरे नाना लगते थे और 18 अगस्त को तहसील मुख्यालय पर जाने वाले आन्दोलनकारियों में से एक थे, अनेक बार उस घटना का आँखों देखा हाल सुन चुका हूँ। इसलिए मेरी कल्पनाओं में उसके दृश्य किसी चलचित्र की भाँति अमिट रूप से बसे हुए हैं। उन वीरों के द्वारा उस घटना से एक दिन पूर्व 17 अगस्त को ही मुहम्मदाबाद मुंसिफी पर झंडा फहराने के बाद तहसीलदार इब्राहिम कुरैशी को ललकारते हुए दूसरे दिन 18 अगस्त को पुनः तहसील भवन पर झंडा फहराने की घोषणा करना, इस चुनौती को पूर्ण करने के लिए रात भर घर -घर जाकर पूरे गाँव को जागृत करना, 18 अगस्त को प्रातः काल

गाँव की पाठशाला के प्रांगण में एकत्रित होकर मार्ग में बाढ़ जनित कठिन बाधाओं को पार करते हुए तहसील मुख्यालय को प्रस्थान करना, मध्य मार्ग में नायक डॉ. शिवपूजन राय द्वारा सभी लोगों से महात्मा गाँधी के विचारों का दृढ़ता से पालन करते हुए पूर्ण अहिंसक आंदोलन करने की अपील करना और उनके शब्दों के अनुपालन में उनके साथियों का हँस-हँसकर सीने पर गोली खाना लेकिन समर्थ होते हुए भी प्रतिकार और प्रहार न करना, ऐसा लगता है जैसे ये सब कुछ मेरी आँखों के सामने घटित हुआ है। फिर भी मन-मस्तिष्क में दृश्य का उतरना अलग बात है और स्याही के माध्यम से उन दृश्यों को पन्नों पर उतारना अलग। इसलिए मैं श्री मनीष राय और श्रीमती ममता राय (सुपौत्र एवं सुपौत्री, स्वतंत्रता सेनानी स्व. सीताराम राय)और अनुज सत्येंद्र यादव द्वारा बार-बार इस विषय पर कुछ लिखने का आग्रह किये जाने पर भी शान्त रहा। मैं जानता था कि इस अद्वितीय बलिदान का वर्णन करने की सामर्थ्य और योग्यता मुझ में नहीं है। सबके बावजूद यह पुस्तक अपनी पूर्णता के साथ आज आपके हाथों में है इसके लिए मैं कुछ स्वजनों के प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने हितैषियों का कर्तव्य इस प्रकार बताया है– 'उच्च और महान कार्यों में इस प्रकार सहायता देना, मन बढ़ाना और साहस दिलाना कि तुम अपनी निज सामर्थ्य से बाहर काम कर जाओ।' और भगवान विश्वनाथ की असीम अनुकंपा से मुझे ऐसे दुर्लभ हितैषियों का सान्निध्य प्राप्त है जो आचार्य शुक्ल जी के इस कथन को साकार करते हैं। इस दिशा में कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ वर्तमान के प्रखर वक्ता एवं प्रतिष्ठित साहित्यकार डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय (पूर्व प्राचार्य एवं संपादक -'शहरनामा गोरखपुर')तथा श्री पुष्पेंद्र 'पुष्प'(वरिष्ठ कवि एवं शायर, उरई) का जिन्होंने मुझ सामर्थ्यहीन और अपात्र में अपने ज्ञान और कौशल से सामर्थ्य उत्पन्न की। हताश होने पर साहस बढ़ाया और भ्रमित होने पर मार्ग दिखाया। मैं विनम्र भाव से यह स्वीकार करता हूँ कि इस पुस्तक का शब्द-शब्द आप दोनों श्रेष्ठ जनों ने हाथ पकड़ कर मुझसे लिखवाया है।

मैं आभारी हूँ गुरुदेव डॉ. बैजनाथ पाण्डेय, डॉ. हर्षवर्धन राय (वरिष्ठ सर्जन, गोरखपुर) तथा श्री गोपाल जी राय का जिन्होंने समय-समय पर प्रोत्साहित करके मुझे ऊर्जस्वित किया है। आभार व्यक्त करता हूँ डॉ. मांधाता राय(पूर्व प्राचार्य, स्वामी सहजानंद स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाज़ीपुर) एवं श्री अवधेश राय (एडवोकेट, हाईकोर्ट प्रयागराज) का जिनके द्वारा प्रदान की गई पुस्तक और उक्त घटना से संबंधित पाठ्य सामग्री ने इस सृजन को सरल बनाने में मेरी सहायता की है। आभारी हूँ स्व. रामाज्ञा राय (पूर्व सचिव, माध्यमिक शिक्षा), श्री जयप्रकाश राय (पूर्व प्रधान, शेरपुर), डॉ. सुरेंद्र नाथ राय (मऊ), श्री अजीत सिंह (संपादक-भोजपुरी संगम मासिक पत्रिका),

श्री ओमप्रकाश राय (सुपौत्र- बलिदानी डॉ. शिवपूजन राय), डॉ. सत्यानंद राय (मऊ), श्री रजनीश राय, श्री अनिल राय (सुपौत्र-बलिदानी राजा राय), श्री स्वदेश राय 'सपन' (सुपौत्र-बलिदानी नारायण राय), श्री रविशंकर राय (सेक्शन ऑफिसर, उच्च न्यायालय प्रयागराज) तथा अनुज्ञा पाण्डेय के साथ-साथ अनुजों विश्वजीत शेखर, आशुतोष और आलोक का, जो किसी न किसी रूप में सदैव मेरे साथ खड़े रहे। इस सृजन को पूर्ण करने हेतु उपयुक्त वातावरण प्रदान करने के लिए अपनी धर्मपत्नी श्रीमती शुभम त्यागी, पुत्र स्नेह त्यागी एवं जनता इंटर कॉलेज, एट, जालौन के संपूर्ण विद्यालय परिवार के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ वर्तमान हिंदी साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र पद्मश्री प्रो. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (कृतकार्य अध्यक्ष, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली) का, जिन्होंने मेरी ससंकोच प्रार्थना पर अपना मूल्यवान अभिमत इस पुस्तक को प्रदान किया है। साथ ही डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय का पुनः आभार, जिन्होंने इस कृति पर अपना बहुमूल्य अभिमत भी देने का अनुग्रह किया है। और अंत में हृदय से धन्यवाद अग्रज श्री केशव मोहन पाण्डेय (सर्वभाषा ट्रस्ट, नई दिल्ली) को इस पुस्तक के त्वरित एवं सुरुचिपूर्ण प्रकाशन के लिए।

आशा करता हूँ कि काव्य में रुचि रखने वाले सहृदय- संवेदनशील पाठक, वरिष्ठ कवि एवं सुधी समीक्षक अपना स्नेह, आशीष एवं सुझाव प्रदान करने की कृपा करेंगे।



मकर संक्रांति पर्व
तिथि - 15-1-2024

– **संजीव कुमार त्यागी**
एट, जालौन

परिचय

कभी लम्हे जवानी के, उन्हें जब याद आते थे,
कथा तब एक बचपन में, मुझे नाना सुनाते थे।
जिसे कहते हुए मुखड़ा, कभी तो लाल हो जाता,
कभी दुख की अधिकता से, नयन कुछ भीग जाते थे।।

कथा वह दासता से मुक्ति, पाने हेतु लड़ने की,
जननि की आन पर तन का, विहस उत्सर्ग करने की।
कहानी दीप प्राणों का, जलाकर संगठित होकर,
तिमिर का अन्त करने को, विकर्तन सा सँवरने की।।

कथा सर पर कफन बाँधे हुए, कुछ नौजवानों की,
तिरंगा थाम हाथों में, गरजते दिव्य प्राणों की।
प्रकम्पित थी धरा, गुञ्जित हुआ अम्बर जिन्हें सुनकर,
कथा माँ भारती का यश, सुनाते नव्य गानों की।

अविकसित ईंख से लेकिन, नहीं रसधार बहती है,
कली सुरभित नहीं होती, न जबतक पुष्प बनती है।
कथा गौरव-समर्पण की सुनें, या प्राण अर्पण की,
अबोधों को कहानी तो, कहानी मात्र लगती है।।

तभी तो भाव नाना का, नहीं मुझको समझ आया,
कथा का मर्म अज्ञानी हृदय, छू भी नहीं पाया।
भुला दीं ज्यों कथाएँ बालपन की त्यों मेरे मन ने,
स्वतः उस वीर-गाथा को, समय के साथ बिसराया।।

आज पुन: जब ज्ञानदा, ने की कृपा विशेष।
तो हिय में मुस्का उठे, स्मृतियों के अवशेष॥

कानों में गूँजे स्वतः, नाना के संवाद।
आठों बलिदानी पुनः, आए बरबस याद॥

झलका सीताराम का, वह वीरत्व अशेष।
चमके झिलमिल ज्योति सम, यादव राम नरेश॥

अट्ठारह तारीख वह, वह अगस्त का माह।
बनकर अन्तस में जगा, एक नया उत्साह॥

कृपा हुई विश्वेश की, उपजा भावोद्रेक।
हुईं सहायक शारदा, जागृत हुआ विवेक॥

मन ने यह निश्चय किया, चढ़ा शब्द के फूल।
क्यों न करूँ उनको नमन, जिन्हें गया था भूल॥

काव्य शक्ति दी ईश ने, हो उसका सम्मान।
निज वाणी से यदि करूँ, वीरों का यशगान॥

दिव्य प्रेरणा पुष्प की, मन में भरी सुगन्ध।
आशिष् ले विघ्नेश का, रचने चला प्रबन्ध॥

किन्तु बढ़ाता पग कहाँ, हुई लेखनी मौन।
कीर्तिशेष नाना हुए, कथा बताता कौन।।

मिली हताशा फिर हुई, दुश्चिन्ता उत्पन्न।
बिन साक्षी कैसे करूँ, यह सुकर्म सम्पन्न।।

तभी शब्द गूँजे कहीं, आया मन में ध्यान।
पल-पल का साक्षी अमर, है वह दिव्य निशान।।

शत्-शत् उत्साहित नयन, शत्-शत् उन्नत माथ।
मिटने जिसकी आन पर, मिलकर आए साथ।।

उस झण्डे से क्यों नहीं, करते हो संवाद।
अविनाशी साक्षी उसे, होगा सबकुछ याद।।

अन्तस के आदेश का, करके अति सम्मान।
उसी तिरंगे का किया, हाथ जोड़ आह्वान।।

आह्वान

सुनी प्रार्थना चित्त में, प्रकटित हुआ निशान।
विनयपूर्ण यह प्रश्न तब, किया सहित सम्मान।

“भारत के दिव्य निशान अहो,
आज़ादी के अभिमान कहो।
यह मौन-ग्रन्थि दो खोल आज,
हठ छोड़ो ना दो बोल आज।”

“स्मारक है यह किस घटना का,
जिसपर अंकित हैं आठ नाम?
इस प्रांगण में स्थापित किनकी,
सुन्दर प्रतिमाएँ हैं तमाम?”

"किस कारण यह तहसील भवन,
तीर्थों सा आदर पाता है?
क्यों हर आने-जाने वाला,
श्रद्धा से शीश झुकाता है?"

"सुनते हैं 'जय भारत' कहते,
वे साथ तुम्हारे आए थे,
झर-झर झरते अंगारे भी,
जिनके पग रोक न पाए थे।"

"प्राणों के पुष्प तुम्हीं पर तो,
बरसे थे अञ्जलि भर-भर के,
शाश्वत साक्षी तुम ही तो हो,
उस गौरवशाली अवसर के।"

क्या देखा था कह दो मुझसे,
कुछ भी तुम आज छुपाओ ना,
हे ध्वज! अपनी गौरव गाथा,
मुझको भी तो बतलाओ ना।

सुन मेरी बात तिरंगे ने,
खोलीं अपनी मुकुलित पलकें,
चिरकालिक नींद खुली जैसे,
यादों की लहराईं अलकें।

कम्पित अधरों की चुप्पी पर,
लहराईं हों सदियाँ जैसे,
उड़ गई राख अंगारे की,
जग उठी सुप्त ज्वाला वैसे।

केसरिया की टूटी समाधि, बलिदानी बाना लहर गया,
थिर चक्र शान्त श्वेताभ भाग, आन्दोलित होकर फहर गया।
हरिताभ पट्टिका पर जैसे, धरती का आँचल डोल उठा,
थीं दशों दिशाएँ स्तब्ध खड़ीं, साक्षात् तिरंगा बोल उठा।।

"जिसने सारा ब्रह्माण्ड रचा, धरती पर जीवन बरसाया,
बहु रंग-रूप के जीव-जन्तु, सब जिस ईश्वर की हैं माया।
सरि-सर-सागर में जल जिसका, जिसने फूलों को दी सुगन्ध,
जिसकी आज्ञा के सेवक हैं, बादल बताश औ' सूर्य चन्द।।"

"जिसने अपनी आभा देकर, इस जगती को चमकाया है,
उसने ही जीवधारियों में, मानव को श्रेष्ठ बनाया है।।
पर होता श्रेष्ठ नहीं कोई, झूठे ही श्रेष्ठ कहाने से,
श्रेष्ठता सिद्ध होती कर्मों से, जीवन मूल्य चुकाने से।।"

"धरती पर मानव तन पाकर, अगणित प्राणी तो आते हैं,
पर कुछ ही श्रेष्ठ मनुज होने का, गौरव जग में पाते हैं।
कुछ ही अपने सत्कर्मों से, गढ़ जाते हैं नव कीर्तिमान,
कुछ ही जीवन का मूल्य चुका, बन पाते हैं जग में महान।"

“उनमें से भी वे महापुरुष, नर पुंगव माने जाते हैं,
जो मातृभूमि की रक्षा में, हँसकर निज शीश चढ़ाते हैं।
वे अमर सपूत धरित्री के, मरने पर भी कब मरते हैं,
बलिवेदी पर जो प्राणों को, निर्भय न्योछावर करते हैं।”

“जिनके समक्ष थी मृत्यु खड़ी, पर किञ्चित भी भय छू न सका,
बन गई आन चट्टान सदृश, जिनको उत्सव सम थी विपदा।
ऐसे ही वीरों की गाथा, मैं तेरे सम्मुख गाता हूँ,
मेरी आँखों ने जो देखा, वह तुझको आज बताता हूँ।”

“वो था अगस्त सन् बयालीस, गाँधी जी की ललकार उठी,
अंग्रेजों अब भारत छोड़ो, तरुणाई जगी पुकार उठी।
स्वातन्त्र्य प्राप्ति उद्देश्य एक, जन-जन में यह अभियान चला,
करना है या फिर मरना है, हर भारत वासी ठान चला।”

“उत्तर प्रदेश ग़ाज़ीपुर की, धरती, काशी की लघु भगिनी,
पोषिका बनी गंगा जिसकी, हाँ वही प्रवीरों की जननी।
सर्वदा महाहर शंकर की. अनुकम्पा की है छाँव जहाँ,
अपने गौरव पर इतराता, है एक शेरपुर गाँव वहाँ।”

“था दिन वह अट्ठारह अगस्त, नभ से ज्यों प्रलय बरसती थी,
प्लावन से था यह गाँव घिरा, गंगा विकराल गरजती थी।
बढ़ते जल के अवरोधन को, उद्योग सकल कर हारे जब,
बजरंगबली के मंदिर पर, एकत्र हुए पुरवासी तब।”

"मंगल का सुखद सवेरा था, बहता था शीतल मंद पवन,
वीरुध कलरव से कूजित थे, मेघाच्छादित था नील गगन।
थी दिशा-दिशा गुंजायमान, मारुत-सुत के जयकारों से,
चालीसा के मृदु गायन से, घड़ियालों की टंकारों से।"

"संकट मोचन से रक्षा की, कर रहे प्रार्थना सभी जहाँ,
मस्तक में वेग विचारों का, ले खड़ा युवक था एक वहाँ।
शिवपूजन राय नाम जिसका, पेशे से एक चिकित्सक था,
नेताजी का अनुयायी था, स्वातंत्र्य योग का साधक था।"

"सहसा बोला वह वीर-अरे, क्या तुच्छ प्रयोजन करते हो,
क्षणभंगुर जीवन की खातिर, कितना आयोजन करते हो।
गंगा की ये पालक लहरें, कुछ दिन उत्पात मचाती हैं,
लेकिन बदले में खेतों को, उर्वरता भी दे जाती हैं।"

"कुछ दिन के कष्टों का प्रतिफल, सोचो ये कितना देती हैं,
बावड़ियो कुओं पोखरों को, नवजीवन से भर देती हैं।
माता की उमड़ी ममता का, स्तवन करो सम्मान करो,
इनसे स्वतन्त्रता माँग अरे, तुम इनका मत अपमान करो।"

"माँगना अगर है तो आओ, हम महावीर से बल माँगे,
कर सके सिन्धु उल्लंघन जो, वह वेग प्रचण्ड प्रबल माँगे।
नरता को सुन्दरता दे जो, वह साहस धैर्य प्रवर माँगे,
माँगे फिरंगियों से विमुक्ति, आओ स्वराज्य का वर माँगे।"

"इस छुद्र विपत्ति निरोधन को, मत करो दीन दुर्बल विलाप,
हम असुर निकन्दन से आओ, माँगे अरिमर्दन का प्रताप।
सुन्दर अवसर है मिलकर इस, नश्वर तन का सत्कार करें,
जो विपद् देश पर छाई है, उसका बढ़कर प्रतिकार करें।"

"क्यों व्यर्थ विवाद छेड़ते हो" सहसा कोई पीछे बोला,
मुड़कर सबने जब देखा तो, मन का संचित साहस डोला।
जलती आँखें कम्पित शरीर, रक्तिम आनन अत्यन्त क्रुद्ध,
शिवपूजन को थे घूर रहे, दो-चार गाँव के प्रमुख वृद्ध।

"उपदेश बहुत हो चुका चलो, बेसुरा राग यह मत गाओ,
अपने गृह कार्यों को देखो, लेकर प्रसाद अब घर जाओ।
होता कर्तव्य चिकित्सक का, उपचार रोगियों का करना,
प्राणी के दैहिक कष्ट मिटा, जीवन-रक्षा में रत रहना।"

"पीड़ित मानवता के निमित्त ही, यह शरीर पाए हो तुम,
परमेश्वर का प्रतिबिम्ब वैद्य, बनकर भू पर आए हो तुम।
इससे बढ़कर यदि श्रेष्ठ कर्म, अन्यत्र ढूढ़ने जाओगे,
कर्तव्य मार्ग से च्युत हो तब, जग में अपयश ही पाओगे।"

"जिस कर्म हेतु हो युक्त अतः, उसको ही तुम अविराम करो,
है वही वास्तविक राष्ट्रभक्ति, निष्ठित होकर वह काम करो।
अंग्रेजों के विरुद्ध विप्लव, नव आपद को आमंत्रण है,
वीरता नहीं साक्षात् मृत्यु का, अनायास आलिंगन है।"

"भावुक होकर जो कुछ करने, को इन सबको उकसाते हो,
परिणाम भयानक उसका पर, क्यों कर तुम देख न पाते हो।
अगणित सीमन्तों से ईंगुर, इस भावुकता ने पोछे हैं,
अगणित आँखों से सपनों के, सूरज शशि तारक नोचे हैं।"

"कितनों ने दुःसह कष्ट सहे, कितने फाँसी पर झूल गए,
वह जलियाँवाला बाग तुम्हें, स्मरण नहीं क्या? भूल गए?
उन सात अबोध बालकों का, परिणाम न देखा क्या तुमने?
पटना सचिवालय का खूनी, संग्राम न देखा क्या तुमने?"

"हमको भी प्रिय है स्वतन्त्रता, है राष्ट्रभूमि भी अति प्यारी,
मिलता हमको भी कठिन कष्ट, देखकर जननि को दुखियारी।
इन सबसे ऊपर हमें किन्तु, प्यारा तुम सबका जीवन है,
दुर्बल मन की यह ममता ही, हाँ इस तन का संचित धन है।"

"इस पातक का दे दण्ड आज, चाहें जो भी कर्तार हमें,
जग कहे क्लीव कायर कुत्सित, है हर कलंक स्वीकार हमें।
सारे सत्कर्म सुयश भी यदि, इससे विनष्ट हो जाएँगे,
तो भी ये कन्धे अनुजों की, अर्थियाँ नहीं ढो पाएँगे।"

"इसलिए निवेदन करते हैं, समझो इसको आदेश नहीं,
घर जाओ! तुम कुछ लोगों से, होगा स्वतन्त्र यह देश नहीं।
शिवपूजन क्षण भर शान्त रहे, सुन श्रेष्ठ जनों का अनुशासन,
फिर कुछ विचार करके बोले, होकर विनीत अवनत आनन।"

"आदेश आपका शिरोधार्य, अनुपालन धर्म हमारा है,
है शब्द-शब्द स्वीकार मुझे, साक्षी सुरसरि की धारा है।
पर क्षमा करें अपराधी को, जो आज धृष्टता करता हूँ,
पूज्यों से प्रश्न पूछने की, यदि मैं अशिष्टता करता हूँ।"

"यदि स्वयं ईश द्वारा नियुक्त, मानवता का परिचारक हूँ,
रुग्णों दुखितों का दुखहर्ता, पीड़ाओं का उपचारक हूँ।
तो जन्मभूमि भी पीड़ित है, व्रत लेकर इसके रक्षक का,
छूटेगा किस प्रकार कहिए, मुझसे कर्तव्य चिकित्सक का।"

"क्या यह कर्तव्य नहीं मेरा, इसका उपचारक बन जाऊँ?
जननी के व्रण जो ठीक करे, वह अनुलेपन भी मैं लाऊँ?
जिसकी रज से यह जीवन है, यदि उसका दास कहाऊँगा?
कर्तव्य मार्ग से कहिए तब, कैसे मैं च्युत हो जाऊँगा?"

"चौपालों में बतलाते हैं, जिसका महत्त्व नित जन-जन को,
वे स्वयं आज क्यों भूल गए, उस गीता उस रामायण को?
बचपन से करते आए हैं, अनुशीलन हम जिन श्लोकों का,
जीवन में क्या कुछ अर्थ नहीं, उन मन्त्रों उन उपदेशों का?"

"वाणी हो गई मृषा कहिए, क्या जगवन्दित मधुसूदन की?
मूल्यों से भी बलवती हुई, क्या लिप्सा इस नश्वर तन की?
धँसते जाते हैं स्वयं मोह-कर्दम में कैसे योगेश्वर?
क्यों आज पार्थ को रोक रहे हैं, भय विपत्ति का दिखलाकर?"

"इस राष्ट्रभूमि की रक्षा में, बलिदान हुए जो वीर प्रवर,
सकते थे क्या वे रोक मृत्यु को, कहीं गुफा में भी छिपकर?
मिल जाता छुटकारा कहिए, क्या, उन्हें कठिन विपदाओं से?
हो जाते मुक्त सदा को क्या, जग की समस्त पीड़ाओं से?"

"मिल जाता क्या सन्तोष उन्हें, मिट्टी का कर्ज चुकाने का?
जिसके उछंग में जन्म लिया, उसकी रज में मिल जाने का?
कुछ दिन की आयु उन्हें नर से, देवता तुल्य कर पाती क्या?
बलिदानी कह कर ये जगती, चरणों में शीश नवाती क्या?"

"है काल कराल कठोर हृदय, वह प्रेम समझ कब पाता है?
जिसको जिस क्षण ले जाना हो, उसको उस क्षण ले जाता है।
मायिक नर की चित्तवृत्तियाँ, सर्वथा व्यर्थ भय करती हैं,
किसको किसके कंधे जाना, अर्थियाँ स्वयं तय करती हैं।"

"है अत: व्यर्थ यह शोक, 'मृत्यु ने किस किसको कैसे खाया?
अब वेला आई गहने की, जो मार्ग कृष्ण ने बतलाया।
सद्ग्रन्थों ने भी गाया है, कह गए सभी विद्वान यही,
है मातृभूमि की रक्षा से, बढ़कर कोई सम्मान नहीं।"

"इसलिए क्षमा-प्रार्थना सहित, करबद्ध निवेदन है मेरा,
छोड़कर छुद्रता-दुर्बलता, भेदकर मोह-तम का घेरा।
देकर आशीष सफलता का, गुरुजन भी निज अवदान करें,
आदेश करें हर्षित हो अब, हम सभी शीघ्र प्रस्थान करें।"

"थे वृद्ध अवाक् खड़े सुनकर, नव युवकों में नव ओज जगा,
अनसुनी अग्रजों की आज्ञा, करके दल सत्वर एक सजा।
सब बोल उठे-'डॉक्टर बोलो, अब हम सबको क्या करना है?
स्वातन्त्र्य यज्ञ की आहुति बन, मारना है अथवा मरना है?"

"पारावर हम उलीच दें या, पारावत खण्ड-खण्ड कर दें,
कह दो तो अपनी मुट्ठी में, सूरज भी आज बन्द कर दें।
है भगत सिंह की आन हमें, हम शपथ बोस की लेते हैं,
साक्षात् काल से भिड़ने का, आश्वासन तुमको देते हैं।"

"याचन का गर्हित मार्ग छोड़, स्वातन्त्र्य छीन कर लाने को,
अब प्राण हमारे मचल रहे, बलिवेदी पर चढ़ जाने को।
बन्दिनी धरा के कष्टों का, सम्पूर्ण निवारण हो आए,
जो आर-पार का निर्णय दे, इस बार वही रण हो जाए।"

"शिवपूजन शान्ति सहित बोले, नवयुवकों का आक्रोश देख,
जलती आँखों का ज्वाल देख, आरक्त मुखों का रोष देख।
उन्माद आप सबका पुनीत, है पूजनीय यह महोत्साह,
लेकिन स्वराज्य की प्राप्ति मित्र, है एक कंटकाकीर्ण राह।"

"आवश्यकता है साहस की, पग रखने को उसपर जितनी,
उतना विवेक भी वांछित है, प्रज्ञा आवश्यक है उतनी।
पर अनियन्त्रित उत्साह मनुज को, हत विवेक कर देता है,
उन्माद बली हो तो प्रज्ञा की, दृष्टि हरण कर लेता है।"

"फिर हतविवेक प्रज्ञाविहीन, वीरता पंगु हो जाती है,
जिसके कारण जय की ज्वाला, अँधियारे में खो जाती है।
धीरता शूर की शोभा है, साहस है उसका कंठहार,
लेकिन विवेक का वस्त्र न हो, तो क्या शोभा क्या अलंकार।"

"कवि की वाणी भी कहती है, विज्ञों का भी ऐसा मत है,
यह केवल मिथक कपोल नहीं, सर्वथा शास्त्र-श्रुति सम्मत है।
करता है कार्यारंभ सदा, जो नर पहले विचार करके,
सिद्धियाँ स्वयं आतीं उस तक, दासी का रूप धार करके।"

"इसलिए शांत होकर पहले, आओ हम सभी विचार करें,
उन्मादित हो शीघ्रता नहीं, योजनायुक्त व्यवहार करें।
सम्मोहित से थे खड़े सभी, सुन उस ओजस्वी वाणी को,
अपलक होकर थे देख रहे, उस धीर यशस्वी मानी को।"

"सहसा बढ़कर बोला कोई, 'मत समय निरर्थ गँवाओ अब',
हम सबको जो श्रेयष्कर हो, वह मार्ग तुम्हीं बतलाओ अब।
वह पथ जिसका अनुगामी बन, अपना अस्तित्व कृतार्थ करें,
यह मानव जन्म सार्थक कर, हम सफल आज पुरुषार्थ करें।"

"वह पंथ बताओ पथिकों को, जिस पर चलकर सम्मान मिले,
जीवन की यात्रा को उसका, सर्वोत्तम अभिसंधान मिले।
सब लोग एक स्वर में बोले, हाँ-हाँ शिवपूजन बतलाओ,
करके प्रदान नेतृत्व हमें, तुम राह सिद्धि की दिखलाओ।"

"उत्कण्ठित है अब रोम-रोम, जननी की व्यथा मिटाने को,
अन्तिम धड़कन तक लड़ने को, खोया स्वराज्य फिर पाने को।
कोलाहल को कर शान्त वीर, वह गरज उठा बादल जैसे,
सुरसरि की लहरें कम्पित हों, डोला महि का आँचल वैसे।"

"संकल्प आप सबका पावन, बजरंगी पूर्ण करें, बल दें,
जिससे देशोद्धारण होवे, वह शौर्य-धीरता निश्चल दें।
अपने साहस-बल-पौरुष पर, कोई शंका है शेष नहीं,
पर कटु सच है कुछ लोगों से, होगा स्वतन्त्र यह देश नहीं।"

"यद्यपि हम सबमें हर योद्धा, सौ-सौ गोरों पर भारी है,
विद्रोह वृहद पर करने को, सीमित अपनी तैयारी है।
अब मैं अपना मत कहता हूँ, त्रुटि पर पहले ही जोड़ हाथ,
उद्देश्य प्राप्ति को वांछित है, रणनीति कृपा के साथ-साथ।"

"पहले विचार आवश्यक है, निर्बलता और विषमता का,
क्रमबद्ध प्रयास अपेक्षित है, मूल्यांकन कर निज क्षमता का।
इसलिए योजनाबद्ध रूप से, आगे कदम बढ़ाना है,
क्रमशः सोपानों पर चढ़कर, उत्तुंग शिखर तक जाना है।"

"जागरण करें जन-जन का हम, घर-घर में क्रान्ति-ज्योति बालें,
भारत माँ के जयघोषों से, मृतको में नए प्राण डालें।
जनता में जोश जगाने को, प्रारम्भ आज अभियान करें,
लिखने जय का अध्याय प्रथम, आओ मिलकर प्रस्थान करें।"

"शासन की प्रथम इकाई पर, अपना निशान फहराएँगे,
मिलकर मुहम्मदाबाद चलो, तहसील स्वतंत्र कराएँगे।।
तहसीलदार इब्राहिम का, अवशेष उसे लौटाना है,
वीरता देखनी है उसकी, अपना पौरुष दिखलाना है।"

"करके पहला अभियान सफल, पग आगे और बढ़ाएँगे,
आज़ादी का ध्वज जनपद के, मुख्यालय पर फ़हराएँगे।
मेरे मत से है उचित यही, अब अपनी सम्मति व्यक्त करो,
यदि शंका कोई हो मन में, तो उसको भी अभिव्यक्त करो।"

"वह तेजस्वी जब शान्त हुआ, अपनी बातें पूरी कर के,
तब देख रहे थे सभी उसे, नयनों में नेह-बिन्दु भर के।
बज उठीं तालियाँ साधु-साधु, अनमने लोग भी बोल उठे,
करने को उसका आलिंगन, सब अपनी बाँहें खोल उठे।"

अगणित कण्ठों का स्वर गूँजा, "हम सभी समर्थन करते हैं.
इस दूरदर्शिता का सहर्ष, वन्दन-अभिनन्दन करते हैं।"
जन-जन में नव आवेश भरा, आवेग तोड़ तटबन्ध चला,
जो राह रोक थे अड़े हुए, उन वृद्धों का भी हठ पिघला।

नयनों में गर्वित प्रेम भरे, अवरुद्ध कण्ठ पुलकित शरीर,
गदगद वाणी में बोल उठे, सारे अग्रज होकर अधीर।
"है जननी तेरी धन्य, धन्य है वीर वंश की परिपाटी,
तुझको पाकर हो गई धन्य, अपने पुर की पावन माटी।"

"है सर्वविदित दौर्बल्य एक, मानव के अज्ञानी मन का,
अतिशय बढ़ जाता मोह उसे, अवसान देख निज जीवन का।
जैसे दीपक की लौ बुझने से, पहले कुछ बढ़ जाती है,
वैसे आसन्न मृत्यु को भी, जीने की चाह सताती है।"

"इस नश्वर जग की ममता ही, फेंक कर जाल भ्रम का उस पर,
करती बलात् अधिकार, मनुज की बुद्धि और मन के ऊपर।
जिसके कारण पथभ्रष्ट पुरुष, अति घोर तिमिर से घिरता है,
होता है मुक्त तभी उससे, जब दीप ज्ञान का जलता है।"

"हाँ वही मोह का अन्धकार, हम सबके मन पर छाया था,
जिसके कारण भय भी अपना, विकराल रूप धर आया था।
लेकिन समस्त भ्रम दूर हुआ, जब उत्स ज्योति का फूटा है,
हो गया प्रबोध कि इस तन का, सम्मोह सर्वथा झूठा है।"

"अब अग्रज अनुज नहीं कोई, जन-जन तेरा अनुगामी है,
तू जो चाहे वह निर्णय ले, हम सबकी सब पर हामी है।
अब यही निवेदन है तुमसे, हम सबको ले कर साथ चलो,
बल दिया वीर बजरंगी ने, संरक्षक हैं रघुनाथ चलो।"

"है आन चण्डिका की हमको, तन-मन अब वज्र बनाएँगे,
खप्पर भर-भर अरिरक्त चढ़ा, माता की प्यास बुझाएँगे।"
इस निश्छल नेह-निवेदन पर, आँखों में आए आँसू भर,
गद्गद् शिवपूजन हर्षित हो, बोले करबद्ध निवेदन कर।

"मुझको भावुक कहकर पहले, श्रीमान मुझे समझाते हैं,
फिर स्वयं उसी भावुकता के, फंदे में क्यों फँस जाते हैं।
हम सब छोटे हैं इसीलिए, हठ-धर्म हमें अति प्यारा है,
निर्णय का भार आप सबका, आग्रह अधिकार हमारा है।"

"इसलिए निवेदन करता हूँ, कर कृपा आप स्वीकार करें,
सम्भावित पर कर लें विचार, फिर तदनुसार व्यवहार करें।
जितना दायित्व हमारा इस, वसुधा की स्वतन्त्रता का है,
उससे गुरुतर दायित्व कहीं, अपने पुर की रक्षा का है।"

"प्लावन पीड़ित यह गाँव, पूर्व से ही विपत्ति का मारा है,
इस समय एक दूजे का ही, हम सबको एक सहारा है।
यदि सारे सक्षम पुरुष विपद, में, इसे छोड़कर जाएँगे,
तो इसकी रक्षा क्या अबला, बालक, अशक्त कर पाएँगे?"

"कर्तव्य हमारा ही तो है, बीमारों की संरक्षा का?
निश्शक्तों और नारियों की, नवजातों की अभिरक्षा का?
अतएव प्रार्थना मेरी यह, सारे अग्रज स्वीकार करें,
अनुजों को दें आदेश, स्वयं पुर की रक्षा का भार धरें।"

"शिवपूजन के इन तर्कों से, हो गए निरुत्तर सभी वहाँ,
लौटे वरिष्ठजन प्रमुदित मन, चिन्ता-आशंका रही कहाँ।
रह गए शेष नवयुवक मात्र, बजरंग बली के प्रांगण में,
मुखमण्डल पर नव तेज़ लिए, उत्साह नव्य लेकर मन में।"

"सुखदेव-ऋषीश्वर-विश्वनाथ, जगदीश-देवमुनि-परमेश्वर.
श्री रामाधार-कृपाशंकर-नंदू-नारायण-नागेश्वर।
खेदन यादव-गंगाधारी-यमुना-विंध्याचल रामबदन,
शंकर दयाल-राजा-छेदी-गोपाल-तिलेश्वर सिंहासन।"

"ऐसे अनेक नरसिंह वीर, राष्ट्रीय आन के लिए अड़े,
कुछ भी करने को उद्यत हो, सब के सब थे उत्फुल्ल खड़े।
हँसकर बोले ऋषिदेव "मित्र! आ गई घड़ी सिर देने की,
यमुना गिरि की पीड़ाओं का, चुन-चुनकर बदला लेने की।"

"आ गया समय इब्राहिम को, उसकी औकात बताने का,
कल की दी हुई चुनौती को, अब पूरी कर दिखलाने का।"
"हँस पड़े सभी कुछ ही पल में, बोझिल तनाव का बोझ हटा,
भारत माँ के जयकारों से, नभमण्डल का हर छोर पटा।"

बोले शिवपूजन "चलो सभी, अपने-अपने घर हो आएँ,
घण्टे भर में सब सज्जित हो, शाला के सम्मुख आ जाएँ।
पर याद रहे धिक्कार उसे, जो वापस लौट न आएगा,
प्राणों की ममता से बँधकर, घर में छिपकर रह जाएगा।"

तन गए वंशनारायण तब "भाई! मत ऐसी बात करो,
तुम कह दो तो ये प्राण अभी, तज दें इसका विश्वास करो।
अब सब अपने घर को जाएँ, मैं विद्यालय पर जाऊँगा,
संकल्प पूर्ण कर लौटूँगा, तब ही घर मुख दिखलाऊँगा।"

हो गए खड़े रोएँ सबके, सुन वंश वीर का यह गर्जन,
नस-नस में लहू बना लावा, कुछ और हुआ संकल्पित मन।
"मैं वहीं प्रतीक्षा करता हूँ, तुम सभी शीघ्र ही आ जाना,
घर में हों जो हथियार पड़े, उनको अवश्य लेते आना।"

अपने वचनों से जन-जन के,
अन्तस्थल को झकझोर चले।
चल पड़े सभी अपने घर को,
वे विद्यालय की ओर चले।

हुआ तिरंगा शान्त अब, होकर कुछ बेचैन।
कहीं शून्य में खो गए, उसके अपलक नैन।।

ललकार

देख अवस्था केतु की, मैंने जोड़े हाथ।
अपनी जिज्ञासा कही, पुनः विनय के साथ।

एक बात हे पूज्यवर, समझ न पाया मूढ़।
इब्राहिम के कर्ज का, है रहस्य क्या गूढ़।

क्षण भर को विश्राम कर, मुझको उत्सुक जान।
आगे का वृत्तान्त यूँ, कहने लगा निशान।।

नव किशोर दिनकर करता था,
नभ में मनहर क्रीड़ाएँ,
उस पर वारी-वारी जातीं,
कृष्ण-धवल घन बालाएँ।

कभी किसी के श्यामाम्बर से,
निज आनन ढक लेता था,
फिर झीना आँचल सरकाकर,
महि का मुख तक लेता था।

स्नेहिल स्पर्श किसी बदली का,
देता था जब तोष उसे।
करता उसका आलिंगन कुछ,
पल को जब मदहोश उसे।
तब वह उसके वक्षस्थल पर,
नैन मूँद सो जाता था,
जिससे उतने क्षण त्रिभुवन में,
अंधकार हो जाता था।

जब मेघों से ढके गगन की,
छाया जल में पड़ती थी,
प्लावित धरती की शोभा तब,
ऐसे और निखरती थी।
मानो अम्बर से भी सुन्दर,
एक और अम्बर पाकर,
भ्रमवश वसुन्धरा के मन में,
नभ का सूर्य बसा आकर।

कहीं मछलियों की छप-छप से
जल आन्दोलित होता था,
जल मुर्गी का जोड़ा जल में,
कहीं लगाता गोता था।
चिर साधक एकाग्रचित्त वर
महामुनीश मनस्वी सा,
एक पैर पर खड़ा कहीं पर,
बगुला श्रेष्ठ तपस्वी सा।

दूर टिटिहरी किसी वृक्ष से,
जन की पीर सुनाती थी,
हे गंगा माँ! दया करो अब,
करुण पुकार लगाती थी।
नित वर्षा से प्लावन का जल,
नित्य निरंतर बढ़ता था,
फिर भी दादुर लोभी नर सा,
और-और ही रटता था।

इन सबसे अन्जान कौन यह,
अपनी धुन में मतवाला,
चला जा रहा मत्त हस्ति सा,
पीकर ज्यों मद का प्याला।
जल में मग्न मार्ग पर उसके,
पग कुछ ऐसे पड़ते हैं,
जैसे बब्बर शेर विपिन में,
निर्भय सहज विचरते हैं।

अंग-अंग वीरत्व युक्त, मुख
नवल जलज सा खिला हुआ,
रोम-रोम पुलकित था जैसे,
हो अकूत धन मिला हुआ।
आँखों में थी चमक दिवाकर,
की नव-किरणों सी हर्षित,
क्षिप्र चाल से चला जा रहा
था, उत्साहित उर सस्मित।

और कौन? शिवपूजन ही वह,
राष्ट्र देवता का किंकर,
अरे वही प्रिय थी स्वतन्त्रता,
जिसको प्राणों से बढ़कर।
घर की ओर चला जाता था,
दृढ़ संकल्प अपार किये,
नेत्रों में आशा की द्युति,
मन में अनगिनत विचार लिये।

सोच रहा था "कल ही तो,
उन कुछ गिनती के लोगों ने,
मुट्ठी भर कृषकों-छात्रों के,
एकत्रित उद्योगों ने।
जब मुहम्मदाबाद मुंसिफी,
पर अपना अधिकार किया,
और डाकघर के मस्तक पर,
भारत का ध्वज गाड़ दिया।"

"तब कैसे तहसीलदार वह,
इब्राहिम बौराया था,
किसी चोट खाए भुजंग सा,
ज़हर उगलता आया था।
और हमें धमकाकर बोला,
सावधान रुक जाओ सब,
प्राण और तन प्यारे हों तो,
जाओ लौट यहाँ से अब।

“यदि कोई आगे आया तो,
बन्दूकें अब गरजेंगी,
शोणित से लथपथ तुम सबकी,
लाशें पल में तड़पेंगी।
शीश तुम्हारे टँगे मिलेंगे,
दोधारी संगीनों पर,
अट्टहास कर मौत करेगी,
नर्तन छाती पर चढ़ कर।”

तब उसको ललकारा उसने,
“किसको अरे डराते हो?
रिपुसूदन के भक्तों को तुम,
तन का मोह दिखाते हो?
इस क्षणभंगुर तन की ममता,
सिर्फ सताती है उसको,
अजर-अमर आत्मा की सत्ता,
पर विश्वास नहीं जिसको।

वही मूर्ख भौतिक शरीर की,
नश्वरता से डरता है,
जो इसको खोने के भय से,
भीत नित्य ही मरता है।
भय उसको होगा जो मरकर,
पुन: शरीर न पाता है,
उसको कैसा भय जो लेकर,
नया जन्म फिर आता है।

वह तो जीवन-यात्रा में जब,
चलते-चलते थक जाता,
तब श्रम खोने हेतु मृत्यु के,
आँचल में आश्रय पाता।
करके कुछ विश्राम क्लान्ति खो,
त्याग जीर्ण वस्त्रों सा तन,
पुनः शुरू यात्रा करता है,
पाकर नूतन-तन-जीवन।

"अंश अमर अविनाशी के हम,
अतः मृत्यु से डरना क्या?
मरना ही है एक बार तो,
बार-बार फिर मरना क्या?
अतः सुनो! बकवाद छोड़कर,
पहले बन्दूकें भर लो,
हम तो कफ़न बाँध कर आए,
तुम अपनी चिन्ता कर लो।"

"ओ विदेशियों के टुकड़ों पर,
मान बेच पलने वाले,
भीख स्वरूप मिले पद के मद,
में माँ को छलने वाले।
मार्ग छोड़ दे वरना तेरी,
सन्तानें पछताएँगी,
ये संगीनें-बन्दूकें सब,
धरी-पड़ी रह जाएँगी।"

“एक-एक कंकड़ मारें तो,
यहीं दफ़न हो जाओगे,
हम मिलकर दहाड़ भी दें तो,
खड़े-खड़े मर आओगे।
किन्तु तुम्हारे जैसे पापी,
पर यदि हाथ उठाएँगे,
तो कीचड़ में ईंट मारकर,
स्वयं मलिन हो जाएँगे।”

“सावधान हो अतः यहाँ से,
शीघ्र चले अब जाओ तुम,
उस तन को उस जीवन को,
ऐसे मत व्यर्थ गँवाओ तुम।
जिसके लिए बन्धु की छाती,
पर गोली चलवाते हो,
फिरंगियों के पीछे कुत्तों,
जैसे पूँछ हिलाते हो”।

“जाओ निर्लज्जों अब अपना,
मुख मत हमको दिखलाओ,
पर जाते-जाते मेरा यह,
संदेशा लेते जाओ।
जाकर यह अवश्य कह देना,
अपने उन आकाओं से,
छद्म वणिक का वेश बनाकर,
आए आक्रान्ताओं से।”

बाँध लिया है उन्हें पाश में,
मृत्यु रूपिणी व्याली ने,
पुन: मुण्ड माला धारण की,
क्रूर कराली काली ने।
महाचण्डिका रुधिर तृषा से,
आकुल अब हुंकार उठी,
करने को संहार म्लेच्छ का,
ले खप्पर तलवार उठी।

"खोल दिया है नयन तीसरा,
प्रलयंकर कैलाशी ने,
ठान लिया है करो-मरो का,
व्रत हर भारतवासी ने।
जाग उठे हैं सुप्त सिंह, अब
व्यर्थ बढ़ाएँ बैर नहीं,
भारत छोड़ें शीघ्र अन्यथा,
प्राणों की है खैर नहीं।"

उसके इतना कहते ही सब,
क्रान्तिवीर हुंकार उठे,
सोत्साहित जगदम्ब भगवती,
की जय सभी पुकार उठे।
रोष रूप में क्षण-क्षण बढ़ते,
संकट को तब भाँप गया,
सुनकर क्लीव कुरैशी भय से,
शीर्ण पर्ण-सा काँप गया।

सिपाहियों को किया इशारा,
पीछे हटो लौट जाओ,
खून सवार हुआ इनके सिर,
छेड़ो मत! मत टकराओ!
फिर कुछ ऊँचे स्वर में बोला,
थोड़ा सा मुस्का करके,
उन सबका उपहास उड़ाती,
वाणी उन्हें सुना करके।

"संख्या में हैं अधिक इसलिए,
सिंह आज ये बनते हैं,
बरसाती नदियों के जैसे,
चढ़ते और उफनते हैं।
परिचय किन्तु सिंह का उसकी,
सहज प्रकृति बतलाती है,
वह एकल चलता है वन में,
भेंड़ भीड़ में आती है।"

"चुपके से आ गए, उपद्रव
को वीरता बताते हैं,
ऊपर से बेशर्म मुझे ही,
गीता-पाठ पढ़ाते हैं।"
सुनते ही ये व्यंग्य वचन, तन,
में चपला सी चमक उठी,
घृत पड़ते ही ज्वाला जैसे,
अधिक प्रबल हो दमक उठी।

कसीं मुट्ठियाँ दाँत भिंचे,
"क्या, बोल रहा है दुष्ट अरे?"
मारो जीवित मत जाने दो,
उठा शोर सब दौड़ पड़े।
बड़े परिश्रम से उसने फिर,
हाथ जोड़ रोका सबको,
"गुस्से में मत धीरज त्यागो",
यह कहकर टोका सबको।

"हम संख्या में अधिक लोग,
यदि इन पर हाथ उठाएँगे,
तो हिन्दुस्तानी गौरव पर,
अमिट कलंक लगाएँगे।
ये पापी पीड़ित होंगे, जग
सहानुभूति लुटाएगा,
हत्यारा हम देश प्रेमियों,
को ही बोला जाएगा।"

"प्रथम प्रयास किया धमकाकर
पीछे हमें हटाने का,
अब प्रयास है इसका देखो,
हम सबको उकसाने का।
दोनों का उद्देश्य एक है,
हम कैसे भी रुक जाएँ,
आन्दोलन दुर्बल हो जाए,
क्रान्तिवीर सब झुक जाएँ।"

"गोरों का षड्यन्त्र यही है,
छिन्न-भिन्न हर कड़ी रहे,
भारतवासी एक न होवें,
फूट देश में पड़ी रहे।
माँग करे जो भी स्वराज्य की,
वह विद्रोही कहलाए,
उसकी छवि को जनमानस में,
उपद्रवी समझा जाए।"

"जिससे जनसाधारण उसका,
साथ नहीं दे पाएगा,
और स्वप्न स्वातंत्र्य प्राप्ति का,
सपना ही रह जाएगा।
अतः निवेदन है रुक जाओ,
समझो और विचार करो,
कुटिल चाहता है जैसा, तुम
वैसा मत व्यवहार करो।"

लोग रुक गए अनुनय सुनकर,
मानस का आक्रोश थमा,
प्राण बचे तहसीलदार के,
नवयुवकों का रोष थमा।
कहा कुरैशी से मैंने तब,
"कान खोलकर सुन लो तुम,
यह है मेरी खुली चुनौती,
इसको मन में गुन लो तुम।"

“संख्या में हैं अधिक और हम,
चुपके से यदि आए हैं,
जिसके कारण तेरे सैनिक,
डरे और घबराए हैं।
तो अवसर तुझको देने को,
आज लौट कर जाएँगे,
तैयारी पूरी कर लेना,
हम सब कल फिर आएँगे।”

“जितनी चाहो फौज बुलाकर,
तुम भी भीड़ जुटा लेना,
संगीनें सज्जित कर लेना,
या तोपें मँगवा लेना।
अब तेरी सामर्थ्य देखने,
हम अवश्य ही आएँगे,
आज मुंसिफी मुक्त कराई,
कल तहसील कराएँगे।”

“जब तहसील भवन पर भारत,
का परचम लहराएगा,
नाहर कौन शृगाल कौन है,
स्वत: ज्ञात हो जाएगा।”
यह सुनकर तहसीलदार वह,
आहत अहि सा ऐंठ गया,
अवनत आनन अपमानित हो,
जा गाड़ी में बैठ गया।”

फड़के होंठ और आँखों में,
जैसे लहू उतर आया,
क्रुद्ध विवश करतल मलता वह,
मुख से कुछ न बोल पाया।
विकृत-वदन कम्पित स्वर में,
जब डाँटा उसने चालक को,
दशा देखकर यह उसकी तब,
हँसी आ गई हम सबको।

पड़ी हँसी उसके कानों में,
जैसे ज्वाला में ईंधन,
सहन नही कर पाया जब तो,
किया गमन उसने तत्क्षण।
जुटे सभी उसके जाते ही,
मिलकर मुझको घेर लिया,
'कल क्यों? आज क्यों नहीं? सबने,
एक साथ यह प्रश्न किया।

बोले सीताराम-बन्धु! यह,
कल-कल की रटना छोड़ो,
अत्युत्साहित होकर ऐसे,
अवसर से मत मुख मोड़ो।
कल का आश्रय लेने वाला,
सफल नहीं होने पाता,
कारण है बीते कल जैसे,
कल भी कभी नहीं आता।

इसीलिए श्रमशील समय की,
चिन्ता कभी न करते हैं,
कल-कल की कुल-कुल वे करते,
जो उद्यम से डरते हैं।
सिपाहियों की संख्या कम है,
आज प्रशासन दुर्बल है,
खुद तहसीलदार बेबस है,
उसे न कोई सम्बल है।

सुन्दर अवसर है शिवपूजन!
मत अन्यथा विचार करो,
अग्निहोत्र में घृत डालो न कि,
जल की तुम बौछार करो।
जब-जब अरि की दुर्बलताओं,
पर से दृष्टि हटाई है,
कहता है इतिहास कि हमने,
तब-तब मुँह की खाई है।

उचित समय पर उचित कर्म से,
पुन: अगर हम चूकेंगे,
तो ईश्वर भी साथ न देगा,
भाग्य देश के फूटेंगे।
सब कुछ है अनुकूल हमारे,
और एकमत हैं सारे,
तुम भी अधिक विचारो मत,
अब आगे बढ़ो, चलो प्यारे।

करें प्रतीक्षा कल की क्यों जब,
आज सुनहरा है अपना,
मग प्रशस्त है बढ़ें क्यों नहीं,
मूर्त करें देखा सपना।
मेरे मत से इस अवसर का,
लाभ अवश्य उठाएँ हम,
अपनी यह तहसील आज ही,
अपनी करके जाएँ हम।

यह सुनते ही बढ़े सभी जन,
दुर्गा की जयकार हुई,
'अंग्रेजों भारत छोड़ो' की,
पुनः शुरू ललकार हुई।
उसने बढ़कर पुन: भित्ति बन,
मार्ग सभी का रोक लिया,
मेरी एक प्रार्थना सुन लो,
हाथ जोड़ यह विनय किया।

"पहले रुक कर एक बात का,
पल भर ज़रा विचार करो,
फिर जो समझो उचित उसी का,
सम्मत हो व्यवहार करो।
सोचो वीर प्रसूता धरती,
हर बालक है राम जहाँ,
क्षण में सिंधु लाँघने वाले,
हुए वीर हनुमान जहाँ।

“जहाँ सृष्टि का गूढ़ बताते,
वेद-पुराण-उपनिषद हैं,
जिनके अमृत वचन युग-युग से,
प्रामाणिक हैं शाश्वत हैं।
जहाँ शोक से व्यथित हृदय को,
संबल देती गीता है,
भ्रमित पार्थ को मार्ग दिखाती,
वाणी दिव्य पुनीता है।

जहाँ सहस्त्र गजों का बल भी,
कम था मँझले पाण्डव से,
कण-कण जिसका क्वणित आज भी
है शिवजी के ताण्डव से।
जहाँ शान्ति सन्देश सुनाती,
हुई बुद्ध की वाणी है,
वहीं परशुधारी भृगुपति के,
खर-कुठार का पानी है।

सारे जग ने जिसको झुक कर
जग-जेता स्वीकारा था,
वही सिकन्दर जिस धरती पर,
पग रखते ही हारा था।
जिसने हारे सेल्यूकस को,
सम्बन्धी का मान दिया,
बर्बर हूणों और शकों को,
सुसभ्यता का ज्ञान दिया।

जिसका यश कवियों-विज्ञों ने,
वीर-भूमि कह कर गाया,
बप्पा रावल ने जिसका ध्वज,
अरब सिन्धु तक फहराया।
जिसके सुत राजा सुहेल से,
पराक्रमी भटमानी हैं,
राणा और शिवाजी जैसे,
परमवीर बलिदानी हैं।

जहाँ बालिकाओं में सीता,
सावित्री सी सतियाँ हैं,
गृह-गृह में विदुषी गार्गी सी,
विमला की अनुकृतियाँ हैं।
शत्रुमर्दिनी के आशिष् से,
दीपित अब भी घर-घर है,
उर में मनु का शौर्य, दृगों में,
राजस्थानी जौहर है।

जिसका विमल अतीत विश्व में,
पूज्य और सम्मानित है,
सोचो आज उसी वसुधा का,
क्यों इतना अपमानित है।
क्यों वह विदेशियों की दासी,
बनकर आज तड़पती है,
पराधीनता की बेड़ी में,
जकड़ी विवश सिसकती है।

यद्यपि वीरों ने इसके हित,
हँसकर शीश कटाया है,
माताओं ने सुत, सुहागिनों,
ने सौभाग्य गँवाया है।
फतेह बहादुर जैसे अगणित,
सिंहासन को भूल गए,
खुदीराम से बालक फाँसी,
के झूले पर झूल गए।

"वीर कुँवर से वृद्ध केसरी,
बन्धु सिंह से महाबली,
मातंगिनी हजारा जैसी,
अबला ज्वाला बन निकली।
तिलका माझी जैसे अगणित,
भिल्ल वनेचर वनवासी,
सुकुमारी मैना सी बाला,
कूका जैसे संन्यासी।"

और अज़ीज़न सी तवायफें,
ले अपना सर्वस संचित,
गंगादीन, उदइया, बाँके,
जैसे दीन-दलित-वंचित।
रणभेरी का स्वर सुनते ही,
पूर्वाग्रह सब छोड़ चले,
अशफाकुल्ला-बिस्मिल मिलकर,
धार्मिक बन्धन तोड़ चले।

“कठिन कष्ट सह रहे अनगिनत,
बापू के आवाहन पर,
रक्त बहाया है कितनों ने,
नेताजी के सँग चलकर।
फिर भी ज़रा विचारो क्यों,
संकट की बदली छँटी नहीं?
मातृभूमि के पग की बेड़ी,
भला आज तक कटी नहीं?”

“सत्प्रयास स्वातन्त्र्य-प्राप्ति के,
रहे अद्यतन सिद्धि रहित,
सभी क्रान्तियाँ विफल हुईं क्यों,
सत्तावन के गदर सहित।
इतने संघर्षों-बलिदानों,
का कोई फल मिला नहीं,
विकल अम्ब को असह वेदना,
से अब भी कल मिला नहीं।”

“विपुल रक्त से पूरित नदियाँ,
निज कगार को तोड़ बहीं,
उस धारा से किन्तु गुलामी,
का कलंक क्यों धुला नहीं।
कारण क्या है, बलिदानों का,
प्रतिफल जिससे मिला नहीं,
सोचो तो दामन का कीचड़,
हा अब तक क्यों धुला नहीं।”

"क्योंकि मूल पर चोट न होगी,
तब तक वृक्ष न सूखेगा,
कारण जाने बिना गुलामी,
का बंधन क्या टूटेगा"
चुप होकर सब खड़े हो गए,
उसके प्रश्नों को सुनकर,
फिर कुछ लोगों ने कारण भी,
बतलाए मन में गुनकर।"

'कूटनीति में कमी' किसी ने,
'फूट' किसी ने बतलाया,
और किसी ने 'सत्य-अहिंसा',
को भी दोषी ठहराया।
दिया किसी ने दोष देश के,
ज़मींदार-राजाओं को,
और किसी ने हेतु बताया,
गद्दारों-नेताओं को।

कहा किसी ने दैव-योग है,
भाग्य हमारे फूटे हैं,
बढ़ता सतत अधर्म देखकर,
ईश्वर हमसे रूठे हैं।
सबने अपने मत से कारण,
परवशता के गिनवाए,
मातृभूमि के तन के सारे,
व्रण गिन-गिन कर दिखलाए।

तब वह बोला "आप सभी ने,
बिल्कुल सही बताया है,
इन भूलों ने ही सदियों से,
हमको दास बनाया है।
वरना किसकी थी मज़ाल जो,
सागर पर बन्धन डाले?
वन के बलशाली सिंहों को,
पिंजरे में रख कर पाले?"

"यह भी सच है साथ समय के,
हमने बहुत सुधार किया,
अपने दोषों को पहचाना,
और उचित उपचार किया।
किन्तु अभी भी कुछ तो है,
जो दुर्बल हमें बनाता है,
जिसके कारण परवशता का,
दाग नहीं मिट पाता है।"

"और कमी वह क्या है सुनिए
मुझसे, मैं बतलाता हूँ,
अपनी मति से पराधीनता,
का कारण जो पाता हूँ।
मुझको यह कहने में किञ्चित,
भी संकोच न संशय है,
मातृभूमि दासी है इसका,
सबसे बड़ा हेतु भय है।"

"है सिद्धान्त अकाट्य सत्य यह,
विद्वानों की सम्मति है,
उपनिषदों ने सिद्ध किया है,
शास्त्रों की भी सहमति है।
गगन नहीं सजता तारों से,
सूर्य न अस्त उदय होता,
धरती भी गतिशील न होती,
यदि न ईश का भय होता।"

"भय से ही वनराज मनुज के,
सम्मुख खेल दिखाता है,
महामत्त गज भी भय से ही,
परिचारक बन जाता है।
अश्व उठाता बोझ, रीछपति
कौतुक कई दिखाते हैं,
मर्कट नर्तक बन जाते हैं,
वृष हल में जुत जाते हैं।"

"जो करता आघात उसे जग,
श्रद्धा सुमन चढ़ाता है,
दे किरीट सिंहासन उसको,
पलकों पर बैठाता है।
दुनिया में जो कार्य न होता,
है सद्भाव सदाशय से,
अनायास हो जाता है वह,
पलक झपकते ही भय से।"

"मानव मन के कल्मष पल में,
प्रेम भले ही धोता है,
किन्तु प्रशासन-शासन, भय से
ही संचालित होता है।
इसीलिए शासक पहले, भय
का ही आश्रय लेता है,
जो विद्रोही होता उसको,
अदय दण्ड वह देता है।"

"आक्रान्ता अंग्रेजों ने भी,
वही मार्ग अपनाया है,
उनके भय ने ही भारत को,
उनका दास बनाया है।
जीवित ही जलते मानव तन,
वृक्षों पर लटकी लाशें,
तड़प-तड़प कर नित फाँसी के,
तख़्तों पर थमती साँसें।"

"लटकी जिह्वा कटे हुए सिर,
टँगे शूल की नोकों पर,
टुकड़ों में उड़ते शरीर बँध,
आग उगलती तोपों पर।
जलियाँवाला बाग-मानगढ़
जैसे भीषण नरसंहार,
जिन्हें देख हिंसा भी रो दे,
ऐसे पशुवत अत्याचार।"

“अबल अनाथों विधवाओं की,
आँखों में जो पानी है,
इन सबमें अंग्रेजों के भय,
की प्रत्यक्ष कहानी है।
ये भय भारत के मानस से,
दूर नहीं होगा जब तक,
सच कहता हूँ परवशता का,
दाग़ न छूटेगा तब तक।”

“अतः प्रथम कर्तव्य देश का,
साहस पुनः जगाना है,
अंग्रेजों से पहले उनके,
डर को दूर भगाना है।
इसीलिए मेरा कहना है,
जब हम कल फिर आएँगे,
जब तहसील फिरंगी सेना,
से आजाद कराएँगे।”

“गोली बरसाती बंदूकों,
के आगे अड़ जाएँगे,
और तिरंगा अंग्रेजों की,
छाती पर लहराएँगे।
हम सबका यह साहस जनता,
का मन तब झकझोरेगा,
सिंहों की चिरकालिक निद्रा,
को पल भर में तोड़ेगा।”

“भय विमुक्त भारतवासी तब,
जागृत हो हुँकारेंगे,
और विदेशी सत्ता को, क्षण
में जड़ सहित उखाड़ेंगे।”
सुनते ही उत्साहित होकर,
मूर्त वीरता झूम उठी,
नव आशा की किरण विहसकर,
सबकी पलकें चूम उठी।”

बोले सब यथार्थ कहते हो,
हाँ हम कल फिर आएँगे,
दी है आज चुनौती जो वह,
पूरी कर दिखलाएँगे।
कल उनको गंगाजल का हम,
ऐसा स्वाद चखाएँगे,
जिसे फिरंगी जन्म-जन्म तक,
नहीं भूलने पाएँगे।

उत्साहित उर विहसित आनन,
हुँकृति कर घनघोर चले,
गूँज उठी जयकार भगवती
की, सब घर की ओर चले।
करके दृढ़ संकल्प हृदय में,
लहराते अनगिनत निशान,
चले वीर तो सूरज ने भी,
किया प्रमन दिन का अवसान।

तंद्रा टूटी शिवपूजन की,
पाँव बढ़े जल्दी-जल्दी,
कल की घटना की स्मृतियों ने,
और अधिक ऊर्जा भर दी।
याद चुनौती आई तो कुछ,
और रक्त संचार बढ़ा,
बढ़ीं उमंगें, देशभक्ति का
उच्छल पारावार बढ़ा।

रोम-रोम पुलकित हृदय, हर्षित अपरम्पार।
पहुँचा घर के निकट वह, दिखा दूर से द्वार।।

ममता

मेरी जिज्ञासा बढ़ी, हुआ प्रफुल्लित गात।
कहा तिरंगे ने सुनो, अब आगे की बात॥

मानव तन पाकर जितने भी, इस वसुधा पर आते,
पाते जन्म नृपति के गृह में, या सेवक घर जाते।
वे बहुमूल्य वस्त्र धारें या, हों नंगे-भिखमंगे,
किन्तु देखते सभी नित्य हैं, सपने रंग-बिरंगे।

सभी देखते स्वप्न नींद के, आलिंगन में खोकर,
सुख-दुख का चिंतन करते हैं, सदा अचेतन होकर।
किंतु नींद खुलने पर उनके हाथ, नहीं कुछ आता,
दुख की पीड़ा सुख का वैभव, सब कुछ है मिट जाता।

स्वप्न अगर दुखमय होता तो, धन्यवाद हैं देते,
'अच्छा हुआ स्वप्न ही था प्रभु!' कहकर खुश हो लेते।
और सपन सुखमय होता यदि, लगता उनको अच्छा,
तो विनती करके कहते हैं, 'कर देना प्रभु सच्चा।'

इस प्रकार अपने सपनों का, भार ईश को देकर,
सो जाते अधिकांश लोग खुद, सांस चैन की लेकर।
दिनचर्या में पुनः सवेरे, उठकर खो जाते हैं,
नित्य करोड़ों सपने यूँ ही, विस्मृत हो जाते हैं।

पर कुछ आँखें स्वप्न सजाती, हैं चैतन्य सजग हो,
घोर तिमिर में दीपक की लौ, ज्यों जगती जगमग हो।
उसे बसाकर पलकों में नित, उद्वेलित होती हैं,
कर लेतीं साकार तभी, सुख की निद्रा सोती हैं।

जो सहाय मानता स्वयं के, श्रम-साहस पौरुष को,
अपने बल-धीरज संकल्पों, पर यकीन है जिसको।
वह ईश्वर के अनुग्रहों का, आश्रय कम लेता है,
अपना सपना अपने दम से पाकर दम लेता है।

स्वप्न एक ऐसा ही देखा, था उस महा हठी ने,
ध्रुव समान दृढ़ संकल्पित वर, निर्भय वीर व्रती ने।
जिसे पूर्ण करने को दर-दर, फिरता उन्मादी-सा,
आज़ादी की अलख जगाता, निशिदिन वैरागी-सा।

आज पूर्ण विश्वास उसे था, स्वप्न सत्य होने का,
समय आ गया निकट गुलामी, का कलंक धोने का।
इसीलिए था व्यग्र शीघ्र उस, अवसर को पाने को,
कुटुम्बियों को सूचित करके, तुरत लौट जाने को।

आज़ादी की रटन निरंतर, रटता अपने मन में,
उसी एक धुन में डूबा वह, सत्वर गया सदन में।
मगन लगन में जग को भूला, आँगन में जब आया,
वहाँ प्रतीक्षा रत जननी को, दुख से व्याकुल पाया।

पड़ी दृष्टि ज्यों ही बेटे पर, उठकर दौड़ी माता,
बोली-"था विश्वास न मुझसे, होगा वाम विधाता।
जो सुख मिलता है मुमूर्षु को, जाती साँसें पाकर,
दिया वही सुख बेटा तुमने, मुझे लौट घर आकर।"

"किन्तु और कुछ देर न आते, तो अवश्य मर जाती,
सुनकर बातें दुनिया भर की, फटती थी यह छाती।
अशुभ बोलते भी जिह्वा में, पड़े न इनके छाले,
देखो तो कितना जलते हैं, हमसे टोले वाले।"

"सर्वनाश होगा उसका जो, कहे तुझे उत्पाती,
रधिया की सुन तो! कहती है तुझको कुल का घाती।
बोल रही थी तू उकसाकर, सबको मरवाएगा,
तेरे कारण गाँव हमारा मरघट बन जाएगा।

"यदि मुहम्मदाबाद गया तो, मृत्यु अटल है तेरी,
कैसे तुम्हें बताऊँ सुनकर, हुई दशा क्या मेरी।
'नाच रहा है काल निरंतर, बेटा तेरे सिर पर,
गिरते थे ये वचन वज्र सम, तेरी माँ के दिल पर।"

"मेरे लाल! निकट मेरे, कुछ पल तो बैठो आओ,
है सौगन्ध तुम्हे गंगा की, मुझसे सत्य बताओ।
क्या तहसील स्वतंत्र कराने, का प्रण आज लिया है?
और इसी हठ पर गोरों से, तुमने बैर किया है?"

"अपनी ज़िद की इस ज्वाला में, क्या सबको फेंकोगे?
सत्य कहो अन्यथा जननि का, मृत मुख ही देखोगे।''
सुनकर शांत रहा शिवपूजन, रहा देखता माँ को,
करुणा-कम्पति में निमग्न, उस मूर्तिमान ममता को।

हुआ विलम्ब नहीं जब मुख से, शब्द मात्र भी बोला,
तब जननी का शेष धैर्य भी, टूटा मानस डोला।
हाथ पकड़ बेटे का उसने, रखा खींच कर सिर पर,
आँखों में आँसू भर आए, बोली व्याकुल होकर।

"मेरे सिर की शपथ तुझे है, शिवपूजन हठ छोड़ो,
जननी को जीवित चाहो तो, अब यह चुप्पी तोड़ो।
माता का सन्ताप सतत जब, उसने बढ़ता देखा,
खिंची पुत्र के होठों पर, तब मृदुल हास की रेखा।"

बड़े स्नेह से अश्रु पोंछ उन, दुखियारी आँखों से,
लगा लुभाने माँ को अपनी, मनमोहक बातों से।
लेकर हाथों में जननी के, कम्पित युगल करों को,
बोला-"सबकुछ बतलाऊँगा, पहले धीर धरो तो!"

"कहने वाले तो कहते हैं, जो कुछ मुख में आता,
तू उनकी सुनती ही क्यों है, मेरी भोली माता।
अकर्मण्य बस गाल बजाते, हाथ-हाथ पर धरकर,
कर्मठ अपना परिचय देते, सदा शिखर पर चढ़कर।"

"कर्मशील को भला किसी के, कहने से क्या लेना?
उसे प्रलापी की बातों पर, व्यर्थ ध्यान क्यों देना?
रधिया है नादान मूर्ख हैं, सारे टोले वाले,
उनके बुद्धि-द्वार पर तो ज्यों, पड़े हुए हैं ताले।"

"उन्हे सूझता कहाँ स्वार्थ से, इतर कार्य कोई भी?
वे क्यों अपने सुख के आगे, चिन्ता करें किसी की।
अज्ञानी को तन के सुख के, सिवा नहीं कुछ भाता,
उसे वासनाओं से बढ़कर, भला नज़र क्या आता।"

"देश-धर्म-कर्तव्य-नीति सब, उनके लिए वृथा है,
जीवन है धन, धन ही जीवन, मात्र लक्ष्य जिनका है।
उनको अंग्रेजों की रक्तिम-क्रीड़ा से क्या लेना?
जननी जन्मभूमि की दु:सह, पीड़ा से क्या लेना?"

"जिनकी आँखें सदा देखतीं, केवल हित अपना ही,
जिन्हें नहीं अवकाश कि चिन्ता, करें सहोदर तक की।
उनकी बातें सुनकर इतनी, चिन्तित है तू माई?
जिनको जगती में देता है, केवल दोष दिखाई?"

"उन अंधों के लिए भला क्या, कोई विपद् कहीं है?
किन्तु देश की दुश्वारी तो, तुझसे छिपी नहीं है?
तुमने यही सिखाया है हम, सबको बालापन से,
कितना भी हो कठिन समय पर, नहीं टूटना मन से।"

“पथ में दहकें अंगारे या, काल शीश पर छाए,
किन्तु नहीं पग पीछे रखना, विना विजयश्री पाए।
स्वतन्त्रता का मूल्य प्राण है, यही सदैव बताया,
पराधीन सपनेहु सुख नाहीं, का नित पाठ पढ़ाया।”

“मत-निर्णय-अभियान-लक्ष्य ये होते तो मेरे हैं,
लेकिन इनके जनक-प्रवर्तक, संस्कार तेरे हैं।
फिर क्यों मुझको आज भला, तुम ऐसे टोक रही हो,
अपने ही निर्दिष्ट मार्ग से, खुद ही रोक रही हो।”

“माँ, अबला असहाय नहीं, तू, भारत की बेटी है,
भूल स्वयं को आज भला क्यों, दुखिया बन लेटी है?
तेरे आँचल में निसर्ग का, नवोन्मेष पलता है,
सदियाँ इठलातीं, नवयुग का, दिव्य पुष्प खिलता है।”

“शक्ति स्वरूपा कह कर हर, सद्ग्रंथ तुझे ही गाता,
क्लीव केंचुए नहीं जने, तू सिंहो की है माता।
अतः शोक मत व्यर्थ करो अब, परिहारो चिन्ता को,
यह दुर्बलता नहीं शोभती, शिवपूजन की माँ को।”

“हाँ, वह सब सच ही है जो कुछ, तुमने आज सुना है,
मार्ग वीर जो चुनते आए, मैंने वही चुना है।
मुझे गुलामी के जीवन से, मुक्त मृत्यु प्यारी है,
स्वतंत्रता का निमिष मात्र भी, कल्पों पर भारी है।”

"इसी भाव से पुर भी सारा, स्वतः साथ आया है,
जागरूक हैं सभी, किसे कब मैंने भरमाया है?
आँखें खुलती हैं मानव की, सदा सत्य को पाकर,
खुले नेत्र भी मुँद जाते हैं, बहकावे में आकर।"

"और उजाला पाने को जो, नींद त्याग जगता है,
भ्रमित नहीं होता, यथार्थ का, दर्शन वह करता है।
और प्रयासों का मेरे यदि, अल्प प्रभाव कहीं है,
स्वत्व हेतु जागरण जननि!अपराध तथापि नहीं है।"

"जिसकी वायु वक्ष में भरकर, प्राण पुष्ट होता है,
जिसका दिया अन्न खाकर यह, चित तुष्ट होता है।
कण-कण है उपकारी जिसका, सुत वत्सल तृण-तृण है,
ऐसी पावन जन्मभूमि का, भी तो हम पर ऋण है।"

"वही धरा कष्टों से आकुल, हो चीत्कार रही है,
वीर-प्रसू अबला अनाथ सी, विकल पुकार रही है।
सुन उसकी चीत्कार भला हम, कैसे चुप रह जाएँ?
क्यों न समय आया तो हँसकर, उसका कर्ज चुकाएँ।"

"ज्योति जगी आज़ादी की जो, उसको प्रबल बनाएँ?
जागें शेर शेरपुर के भी, निज विक्रम दिखलाएँ?"
सुन निःशब्द हुई जननी, उत्तर न सूझ पड़ता था,
मन को क्या प्रबोध देती जब, दुख असीम बढ़ता था।

धर्म नीति के ग्रन्थ वस्तुतः, पढ़ने में अच्छे हैं,
शास्त्रों के वचनामृत भी, अक्षर-अक्षर सच्चे हैं।
किन्तु अमृत केवल सुनना है, गुनना तीक्ष्ण गरल है,
समाचरण अत्यंत कठिन है, प्रवचन बहुत सरल है।

बोली- "हाय लाल! ये कैसी कठिन घड़ी आई है,
एक ओर है कूप, दूसरी ओर वृहद खाई है।
यदि रोकूँ तुझको तो जग में, धर्म विरुद्ध कहाऊँ,
जाने दूँ यदि तो संभव है, अपनी कोख गवाऊँ।"

"तुम्हीं बताओ किसको पालूँ, और किसे मैं त्यागूँ?
किसकी ओर बढ़ूँ-अपनाऊँ, किसे छोड़कर भागूँ।"
कहते-कहते फफक पड़ी वह, हो अत्यन्त अधीरा,
देख वेदना सुत की भी आँखों, से छलकी पीड़ा।

चारों नयन मौन साधे बस, रहे देर तक रोते,
ढर-ढर कर दृग-बिन्दु धरा को, अविरल रहे भिंगोते।
शिवपूजन के शब्दों से फिर, भंग हुई नीरवता,
बोला "दुर्बल कर दोगी माँ! मुझको भी रो कर क्या?"

"ज़रा विचार करो जननी, इस मोह पाश से बँधकर,
इब्राहिम से कही-सुनी सब, बातों को विस्मृत कर।
घर के किसी अँधेरे कोने, में छिप जाऊँ कैसे?
पिता वीरनायक का जग में, नाम लजाऊँ कैसे?"

"बुझती आँखों में आशा की, दिव्य दीप्ति चमकाकर,
राष्ट्रवाद को गहरी निद्रा, से झकझोर जगाकर।
और स्वयं पीछे हट जाऊँ, मोह प्राण का करके,
तो क्या सुख से जी पाऊँगा, जीते जी यूँ मरके?"

"तेरा पालित यह तन जग में, रहे अयश ही पाता,
हँसें पीढियाँ और पुकारें, तुम्हें भीरु की माता।
पितरों के हिस्से भी मेरे, कारण अपयश आए,
क्या तू सह लेगी यदि मुझसे, यह पातक हो जाए?"

"सच है यदि मैं आश्रय ले लूँ, कापुरुषों के पथ का,
नहीं रहेगी फिर अनिष्ट की, लेश मात्र भी शंका।
अपना पुर भी विपत्तियों से, स्वतः मुक्ति पाएगा,
कल से किन्तु नाम 'कायरपुर', इसका हो जाएगा।"

"कुल की कीर्ति चाहती हो क्या, माँ धूमिल हो जाए?
और दोष सारा का सारा, तेरी गोदी पाए?"
तमक उठी माता यह सुनकर, मोह-बन्ध सब टूटे,
रक्त उतर आया आँखों में, अश्रु-स्रोत अब सूखे।

बोली "विभ्रम की विभावरी, आज मिटा दी तूने,
पल भर को मैं भटक गई थी, राह दिखा दी तूने।
मोहान्धता कराती मुझसे, पाप अन्यथा भारी,
हँसकर कहता जगत कि निंदित, होती ही है नारी।"

"भरतवंश की रीति भूल मैं, थी ममत्व से हारी,
मेरे कारण बेटा बनता, अपयश का अधिकारी।
किन्तु स्वस्थ हो जाग चुकी, अब नहीं तुझे टोकूँगी,
त्यागपथी हर्षित हो जाओ, मार्ग नहीं रोकूँगी।"

"जकड़ न ले ममता फिर मुझको, अतः शीघ्र अब जाओ,
रहे भगवती संग सर्वदा, विजय प्राप्त कर आओ।
देती हूँ आशीष, जगत गुण, सतत तुम्हारे गाए,
कुल गौरव तू बने, धरा का अमर सपूत कहाए।"

आँचल से मुख लिया ढाँक, माता ने आशिष् देकर,
चला पुत्र गदगद हो सादर, चरणों की रज लेकर।
धड़क रही थी छाती, सीधे पाँव नहीं पड़ते थे,
मस्तक में अगणित विचार-घन, उमड़-घुमड़ करते थे।

उर अधीर को थीर कर, पोंछ दृगों के कोर।
विदा प्रिया से माँगने, चला कक्ष की ओर।।

कहते-कहते केतु का, डोला चित्त अडोल।
अधर प्रकम्पित हो उठे, लगे लरजने बोल।।

कम्पित अधरों पर खिंची, असह मौन की रेख।
शांत चित्त ध्वज ने पढ़े, पीड़ा के अभिलेख।।

विदा

द्रवित हृदय मैंने कहा, रख आदर का ध्यान।
कृपया अब कहिए कथा, आगे की श्रीमान।।

सुन वक्ता चैतन्य हो, बैठा उन्नत माथ।
बही अश्रु धारा चली, कथा सरित् भी साथ।।

जितना सुखकर है इस जग में, जन-धन-यश को पाना,
उतना ही पीड़ादायक है, इन्हें त्याग कर जाना।
हो अनिवार्य भले ही यह, हर प्राणी सचर-अचर को,
विदा शब्द ही किन्तु वेदना, का कारक है नर को।

पीर विदा की कोई पूछे, वनगामी रघुवर से,
और पूछ ले व्रज की सुधि में, रोते मुरलीधर से।
यशोधरा की आँखों के आगे छाते उस तम से,
और त्याग सर्वस्व सत्य के, अन्वेषी गौतम से।

पूछे रानी त्रिशला के सुत, अंतिम तीर्थंकर से,
और छोड़ मक्का हिजरत कर, जाते पैगंबर से।
पूछे गाँधी से, सुभाष से, भगत सिंह नाहर से,
चाफेकर बन्धुओं और वीरवर चंद्रशेखर से।

या लौटे छुट्टियाँ बिता कर, रक्षा में सीमा की,
पूछ सके तो उस जवान से, पूछे पीर विदा की।
यही एक संदेश कहेगी, सबकी जीवन गाथा,
जो न ले सके विदा मोह से, ध्येय नहीं वह पाता।

एक यही उत्तर देगा, सबकी आँखों का पानी,
गमन जन्म की और मरण की, रुकना मित्र निशानी।
पथ के अवरोधों से लड़कर, विघ्नों में मुस्काकर,
और निखरता है नर वन में, तृण की रोटी खाकर।

क्षीण धार भी बहती है तो, नद बन सागर पाती,
और नदी भी रुक जाए तो, दुर्गन्धित हो जाती।
अतः त्याग कर राग निरन्तर, पथ पर बढ़ते जाना,
आवश्यक है विदा प्रेय से, श्रेय अगर हो पाना।

पाने को निज श्रेय, पूर्ण निज संकल्पों को करने,
काँटों को चुनकर प्रसून-सा, खिलने और बिखरने।
जननी से आदेश और आशीष विजय का पा के,
चला मांगने विदा व्रती वह, अपनी प्राण प्रिया से।

व्यग्र हृदय था उसका, मग पर पाँव नहीं पड़ते थे,
नभ में घन, विचार मस्तक में, उमड़-घुमड़ करते थे।
कभी सामने आ जाती थी, सुत की कोमल झाँकी,
कभी चित्त विचलित कर देती, प्यारी छवि श्यामा की।

पल भर को आभास हुआ ज्यों, माँ से हाथ छुड़ाकर,
नन्हा दीनानाथ ठुनकता, बाहों को फैलाकर।
गोद उठाने का हठ ठाने, रोता आँखें मीचे,
दौड़ रहा हो बाबूजी की, टेर लगाता पीछे।

मुकुलित कुमुद सदृश मुखड़ा था, आज बड़ा मुरझाया,
माथे पर काजल का चन्दा, भी था कुछ धुँधलाया।
कजरारी आँखों से काजल, के मोती झरते थे,
और टूटकर गौर कपोलों, को श्यामल करते थे।

सुत की इस दयनीय दशा ने, पग में बेड़ी डाली,
हुआ कलेजा चाक, छलकने लगी नयन की प्याली।
व्याकुल हो पीछे देखा तो, वहाँ नहीं था कोई,
लगा एक झटका मानस को, जगी चेतना सोई।

सजग हुआ फिर खुद से बोला, कैसा भ्रम था मन में,
शिशु है कहाँ, अकेली माता ही तो है आँगन में।
और जननि को देख झुक गया, शीश पुनः श्रद्धा से,
माँ की पीड़ा ज्ञात हुई जब, गुजरा उसी व्यथा से।

समझ गया सब भूल जननि, क्यों, हुई आज दुखियारी,
बोला जग में सब मोहों पर, पुत्र मोह है भारी।
लज्जित हुआ हँसी भी आई, अपनी मनोदशा पर,
और हुआ पछतावा क्षण में, उपजी दुर्बलता पर।

छोड़ दीर्घ निःश्वास, नसों में, नवल तरंग बहाकर,
दरवाजे पर पड़े रेशमी, पर्दे को सरकाकर।
भर कर नव उत्साह, हृदय को, दृढ़ संकल्पित करके,
किया प्रवेश कक्ष में, द्रुत गति, से लम्बे डग भर के।

भीतर भार्या को स्वागत् में, सज्जित उसने पाया,
तन पुलकित हो उठा हृदय में, और अधिक बल आया
विह्वल हो देखता रहा उस, शरद चन्द्र लेखा को,
चिर सुहाग के चिह्न रूप, गहरी सेनुर रेखा को।

अरुण-नवोदित सूरज जैसी, माथे की बिंदिया को,
भोले-भाले अपलक नयनों, की मृदु चंचलता को।
गालों पर उतरे गुलाल को, दोलित कनफूलों को,
मुखमण्डल पर आते-जाते, भावों के झूलों को।

रहा देखता नवपल्लव-सी, उस मधुरिम छाया को,
खद्दर की साड़ी में लिपटी, कंचन की काया को।
सपनों में खोया शिशु, सोया, था गोदी में ऐसे,
धरती के ऊपर लेटा हो, पूर्ण चंद्रमा जैसे।

मन को कहना था कुछ लेकिन होंठ नहीं खुल पाए,
देख-देख कर नहीं भरा दिल, नैना ही भर आए।
निरख सदा हँसती पलकों पर, छाते तुहिन कणों को,
गर्वोन्नत दीपित ललाट पर, झिलमिल लघु बूँदों को।

सस्मित अधरों से शब्दों का, सावन बरसा ऐसे,
पावस में चिर मौन त्यागकर, कूकी कोयल जैसे।
"हे प्रिय यह विह्वलता कैसी, यह नीरवता क्यों है?
सदा प्रफुल्लित मुखमण्डल पर, आज हताशा क्यों है?"

"जिसकी द्युति भटकों को उनका, मार्ग दिखाती आई,
उसी भाल पर कैसे दुविधा, की बदली है छाई।
निद्रित हृदयों को झिंझोड़ जो, अब तक रही जगाती,
वही तेजमय कान्ति आज क्यों, धूमिल होती जाती।"

"अम्बर ने भी झुककर की है, जिनकी खूब बड़ाई,
उन दिग्विजयी पैरों में क्यों, आज शिथिलता आई।
सत्य कहो सत्पथी!पंथ का विघ्न किसे ठहराऊँ?
कहीं तुम्हारी विह्वलता का, हेतु न मानी जाऊँ?"

"जो मन किंचित् डरा नहीं, संगीनों की नोकों से,
अविरल अंगारे बरसाती, तोपों-बन्दूकों से।
जिसने कहने वालों की भी, चिन्ता कभी नहीं की,
ममता के आँचल में जो नर, बँधा नहीं पल भर भी।"

"आज वही यों व्यथित भला, क्यों हे प्रिय! मुझे बताओ,
मुझे न मेरी ही नजरों में, अपराधी ठहराओ।
सच कहना कुटुम्ब की चिन्ता, उर को साल रही क्या?
ममता इन बढ़ते पावों में, बन्धन डाल रही क्या?"

तो विश्वास करो मेरा, मन दुर्बल मत होने दो,
क्षणिक मोह के कारण, संचित, साहस मत खोने दो।
ये मेंहदी के रंग रची, कोमल हथेलियाँ देखो,
अरुणोदय की प्रथम रश्मि की, युग-सहेलियाँ देखो।

ये हथेलियाँ फुल्ल कमल जीवन-रस की मृदु प्याली,
ये हथेलियाँ सकल सृष्टि को, सुधा पिलाने वाली।
"ये हथेलियाँ मानवता को, उन्नति का वर देतीं,
इनकी रेखाएँ सदियों को, मंगलमय कर देतीं।"

"इनका स्पर्श कोयले को भी, कंचन कर देता है,
कल्प वृक्ष तिनके को, मरु को नन्दन कर देता है।
फूलों सी सुरभित, शूलों को भी सरसाने वाली,
ये हथेलियाँ खण्डहरों में, स्वर्ग बसाने वाली।"

"अगर किसी कारण क्रोधित हो खड्ग थाम लेती हैं,
तो सर्वस्व नष्ट करने की, टेक ठान लेती हैं।
खप्पर को कर चषक, पान करतीं लोहू की हाला,
हार तोड़ धारण कर लेतीं, नरमुण्डों की माला।"

"वायु तप्त होने लगती है, मिलकर निश्वासों से,
रँग जाती है धरा रक्त से, पट जाती लाशों से।
भय से तीनों लोक काँपते, देख कराली काया,
दसों दिशाओं में छा जाती, महाप्रलय की छाया।"

"हरि-विरंचि विनती करते हैं, दिग-दिगन्त थर्राते,
प्रलयंकर शंकर शरणागत, बन पथ पर बिछ जाते।
जो हथेलियाँ मात्र अलक्तक, से शृंगार न करतीं,
और न केवल सृष्टि कोष में, जीवन की निधि भरतीं।"

"अवसर आ जाने पर सर्वस्, अर्पण भी करती हैं,
अंजलि भर-भर रुधिर काल का, तर्पण भी करती हैं।
वही आज तुमको सगर्व यह, आश्वासन देती हैं,
शब्द-शब्द सुन ले वसुंधरा, साक्षी कामाक्षी हैं।"

"पुण्यपथी! गह बाँह तुम्हारी, ये न तुम्हें रोकेंगी,
और न ही दृग-बिन्दु दिखाकर, तुम्हें कभी टोकेंगी।
इन्हें न भावी की आशंका, या अनिष्ट का भय है,
न ही तुम्हारे संकल्पों पर, ही कोई संशय है।"

"ये न उमंगो के प्रवाह में, अवरोधक पत्थर हैं।
बल्कि तुम्हारे पथ के कंकड़, चुनने को तत्पर हैं।
अतः सभी चिन्ताएँ अपनी, इनको अर्पित करके।
तुम निशंक हो जाओ उर में, नवल चेतना भर के।"

"ये जुड़कर प्रार्थना करेंगी, सदा तुम्हारी जय की।
आतताइयों के विनाश की, निज सुहाग अक्षय की।
उचित नहीं विलम्ब करना अब, व्यर्थ न समय गँवाओ।
टेर रही है मातृभूमि प्रिय!करो शीघ्रता जाओ।"

"पुनः निवेदन करती हूँ, तज दो शंकाएँ सारी,
पग-पग पर है साथ तुम्हारे, अर्धांगिनी तुम्हारी।"
दीर्घ श्वास ले शान्त हुई जब, श्यामा इतना कहकर,
शिवपूजन देखता रह गया, उसको गद्गद् होकर।

रोम-रोम पुलकित था सुनकर, उस सिंही गर्जन को,
शब्द-शब्द ने नई शक्ति दी, विचलित होते मन को।
बोला-"उसकी छाया से ही, डरती है दुश्चारी,
इसलिए तो आदृत है जग में, भारत की नारी।"

"घनावरण में ढकी दामिनी, वह मृदुगात्र नहीं है,
दीपशिखा में छिपी आग है, अबला मात्र नहीं है।
धन्य देवि यह कथन किया है, पुनः प्रमाणित तुमने,
आज शक्ति की प्रतिमा कर दी, है अनुप्राणित तुमने।"

"सहधर्मिणी जानता था मैं, मेरी शक्ति बनोगी,
और मुझे कर्तव्य-पंथ पर, विदा सहर्ष करोगी।
था यकीन हाड़ी रानी का, तेवर तुझमें भी है,
और पद्मिनी का तेजस्वी, जौहर तुझमें भी है।"

"किन्तु परिस्थिति जनित भीति, इस उर को साल रही थी,
दुर्बलता बढ़ते कदमों में, बेड़ी डाल रही थी।
पल भर को मेरी मति पर, भारी चट्टान पड़ी थी,
प्रथम राष्ट्र है या कुटुम्ब, यह दुविधा आन खड़ी थी।"

एक ओर सुत था, माता थी, पिता-बन्धु थे, तुम थी,
और दूसरी ओर टेक थी, जीवन और मरण की।

"हृदय लगा कहने रो-रोकर-'तू है एक पिता भी,
जन्मभूमि का सुत है तो, है जननी का बेटा भी।'
यद्यपि ममता का बन्धन तो, मैंने तोड़ दिया था,
किन्तु पुत्र की छवि ने सारा, साहस छीन लिया था।"

"प्रिया! तुम्हारे वचनों ने पर, भूला मार्ग दिखाया,
छँटी क्षणिक बदली विभ्रान्ति की, सूर्य पुनः उग आया।
अब जाता हूँ विदा मुझे दो, पंथ पुकार रहा है,
हुआ विलम्ब वचन मेरा, मुझको ललकार रहा है।"

"माता ने आशीष दिया है–'कुल गौरव हो जाऊँ',
और प्रिया प्रार्थना तुम्हारी, 'अक्षय आयुष पाऊँ।'
ग्रन्थों की वाणी कहती है, वे सहाय बनते हैं,
सद्हृदयों के वचनों को हरि, स्वयं सत्य करते हैं।"

"जननी का आशीष अतः, जगजननी पूर्ण करेगी,
मेरा है विश्वास विजय श्री, मुझको स्वतः वरेगी।
और वर्ष हैं मेरी वय में, नभ में जितने तारे,
क्योंकि सती के हठ के आगे, तो यम भी हैं हारे।"

"फिर भी इस यात्रा से यदि मैं, वापस लौट न पाऊँ,
स्वतंत्रता के हवन कुंड की, वर आहुति बन जाऊँ।
तो मेरे अवशेषों का, सब भार तुम्हारा होगा,
और सहारा इस कुटुम्ब को, मात्र तुम्हारा होगा।"

"प्रिये! पुत्र बनकर तुम इसका, तब संरक्षण करना,
अपने सुत के हित माता के, साथ पिता भी बनना।
रखना ध्यान जननि मेरी, खुद को न निराश्रित जाने,
और न दीनानाथ स्वयं को, दीन कभी भी माने।"

"इसे न क्लीव और कायर की, बातें कभी सुनाना,
और न गद्दारों प्रवंचकों, का वैभव दिखलाना।
नहीं सुनाना लोरी में भी, गाथा कभी परी की,
कथा किसी राजा-रानी की, सपनों की नगरी की।"

"कभी प्रशंसा किसी सेठ की, इससे प्रिये न करना,
नहीं सिखाना इसको केवल, दौलत के हित मरना।
सदा दूर ही रखना निर्दय-परजीवी महलों से,
स्वप्न कभी भी नहीं दिखाना, स्वर्ण भरे कोषों के।"

"रखना ध्यान सुगन्ध पुष्प की, ही न मात्र ललचाए,
और न केवल तितली के पर, से ही मन बँध जाए।
इसे रहे अभ्यास कण्टकों, में भी मुस्काने का,
प्रभंजनों में दीपक लेकर, तम से भिड़ जाने का।

"इसे सुनाना गीत त्याग-तप, विनय और विक्रम के।
शक्ति-सत्य-साहस-उदारता, करुणा-निष्ठा-श्रम के।
निर्मल सरल ओसकण जैसा, हृदय पवित्र बनाना।
कृषकों-दलितों-मजदूरों का, इसको मित्र बनाना।"

“काम दुखों को कम करने में, जीवन इसका आए,
दीनानाथ नाम जिससे, जग में कृतार्थ हो जाए।
जीवन के जो मूल्य वास्तविक, हैं, वे सदा बताना,
इस बालक को बड़ा नहीं, अच्छा इंसान बनाना।”

इतने में आवाज तेज यह, मुख्य द्वार से आई,
“घर में ही रह जाओगे क्या?बाहर निकलो भाई।”
सुनकर प्रत्युत्तर में “क्षण भर, रुको मित्र! बस आया।”
कहा धीर ने, नयनों में फिर, मेह नेह का छाया।

हँसकर बोला- “चलता हूँ, अब मात्र विदाई लेकर,
बदले में गुरु भार तुम्हें निज, दायित्वों का देकर।
देखो तो तुमसे भी मैंने, कैसी प्रीति निभाई,
याद रखोगी श्यामा तुम भी, मेरी यह चतुराई।”

“अच्छा अब दो विदा चलूँ मैं” कहते हुए ठहरकर,
माँ बेटे को अपलक देखा, नेह नयन में भरकर।
और फेरकर हाथ स्नेह से, सोए शिशु के सिर पर,
निकल गया बाहर कमरे से, तीव्र वेग से मुड़कर।

लगा हृदय को चीर गई वह, फिरी दीठ प्रियतम की,
श्यामा प्रतिमा बनी देखती, रही पीठ प्रियतम की।
ओझल होने पर मन ही मन, शिव को लगी मनाने,
प्रिय चरणों की रज ले सादर, सिर पर लगी चढ़ाने।

आँगन में बैठी माता भी, नभ में दृष्टि उठाए,
माँग रही थी कुशल पुत्र की, आँचल को फैलाए।
शिवपूजन जब घर से बाहर, निकल द्वार पर आया,
खड़ा प्रतीक्षा में व्याकुल तब, वहाँ किसी को पाया।

कंधे पर मुझको लिए, लहराते अविराम।
उत्साहित उर थे खड़े, बाहर सीताराम।।

हँसकर बोले हो गई, मित्र बहुत ही देर।
भय के कारण तो नहीं, हुआ बुद्धि में फेर।।

और गले मिल हँस पड़े, वे दोनों विक्रान्त।
इतना कह कर हो गया, पुनः तिरंगा शान्त।।

प्रतिशोध

नयन मूँद करने लगा, वक्ता कुछ आराम।
पर श्रोता-उर की ललक, हुई और उद्दाम।

बोला मेरी धृष्टता, क्षमा करो श्रीमान।
डालूँ यदि मैं आपकी, निद्रा में व्यवधान।

जिज्ञासा ने कर दिया, मुझे अधिक लाचार।
विवश अतः मैं कर रहा, हूँ अनुचित व्यवहार।

इसे बालहठ जानकर, कृपया करें न क्रोध।
आगे की कहिए कथा, विनती करे अबोध।

यह सुन छाई केतु के, अधरों पर मुस्कान।
बोला कौन अबोध है?तुम हो हठी सुजान।

चलो सुनाता हूँ तुम्हें, अब आगे का हाल।
कैसे चलता है समय, अपनी अद्भुत चाल।

इधर वीर मिलकर चले विद्यालय की ओर।
उधर प्रशासन ने लिया निर्णय बहुत कठोर।

इब्राहिम भूल न पाता था उस पल को,
त्यौरियों और जबड़ों पर पड़ते बल को,
बरछे जैसी चुभती उन मुस्कानों को,
कहकहों संग बिषबुझे व्यंग्य वाणों को।

जननी के जयकारों की वे आवाज़ें,
नभ में गुंजित नारों की वे आवाज़ें,
उसके कानों को प्रतिपल चीर रही थीं,
'थू तुम पर गद्दारों' की वे आवाज़ें।

'यूनियन जैक फाड़ो' की वे आवाज़ें,
कुत्तों को दुत्कारो की वे आवाज़ें,
दिल दहला देतीं थी पल-पल रह-रहकर,
दौड़ो-पकड़ो-मारो की वे आवाज़ें।

तहसील स्वतंत्र कराने की ललकारें,
खोया स्वराज्य फिर पाने की ललकारें,
सामने अधीनस्थों के अपमानित कर,
उसको औकात दिखाने की ललकारें।

जाहिलों गँवारों का वह गाल बजाना,
उस काफिर का वह गीता पाठ पढ़ाना,
उसके सिपाहियों का भय से थर्राना,
वाहन चालक का मन्द-मन्द मुस्काना।

ये दृश्य उसे विषधर समान डँसते थे,
मानो मन को कुण्डली मार कसते थे,
वह तिरस्कार बरछे-सा हिय में धँसकर,
देता था उसको असह कष्ट रह-रहकर।

पीसता दाँत करतल मलता पछताता,
विक्षिप्तों-सा था बार-बार चिल्लाता,
सिर पर उसके जैसे जुनून छाया था,
आँखों में गाढ़ा लहू उतर आया था।

अपमान जिसे कहती है दुनिया सारी,
सच में होती है वह अद्भुत बीमारी,
लग जाती है यह व्याधि जिस किसी नर को,
चाहे विक्रमी धीर अथवा कायर को।

तो वह प्रतिपल व्याकुल अशान्त रहता है,
दिन-रात एक अदृश्य ताप सहता है,
कोई रोके तो दाह और बढ़ता है,
समझाए तो काढ़े-सा कटु लगता है।

युक्तियाँ अन्य सारी असफल हो जातीं,
औषधियाँ दो ही मात्र काम में आतीं,
पहली, जिसने अपमान किया, मिट जाए,
दूसरी, किसी विधि बड़ा अनादर पाए।

इसके अतिरिक्त कहीं उद्धार नहीं है,
प्रतिशोध छोड़ कोई उपचार नहीं है,
बलशाली बड़े-बड़े इससे हारे हैं,
इसने रण में अनगिनत अमर मारे हैं।

इससे हारा बाली अजेय अति बंका,
इसके हाथों ही भस्म हो गई लंका,
इसने ही कुरुक्षेत्र में युद्ध रचाया,
था यही नाश बन धनानन्द पर छाया।

इसके कारण ही सोमनाथ हम हारे,
गोरा-बादल से वीर इसी ने मारे,
इसने 'पृथ्वी' के नयन निकाल लिए थे,
राणा सांगा को अस्सी घाव दिए थे।

मीराबाई को इसने जहर पिलाया,
इसने ही राणा को वन-वन भटकाया,
यह रोग हृदय से स्नेह चुरा लेता है,
भाई-भाई को शत्रु बना देता है।

यह व्याधि अमिय में गरल घोल देती है,
भरते घावों को पुनः खोल देती है,
आगे अचरज की बात सुनाता हूँ मैं,
इसका विशेष गुण तुम्हें बताता हूँ मैं।

जो दुष्ट निबल पर ताकत दिखलाता है,
अबलाओं को पीड़ित कर सुख पाता है,
मासूम बालकों को जो क्रूर सताए,
अनबोल जन्तु को मार वीर कहलाए।

जो तापित को तो और अधिक तड़पाए,
पर प्रबल देखकर चरणों पर गिर जाए,
जिसकी बातें हैं बड़ी, कर्म छोटा है,
उस कायर को यह रोग शीघ्र होता है।

फिर सर्वप्रथम उसका विवेक मर जाता,
आँखों पर बदले का पर्दा पड़ जाता,
तब उसे न नीति-अनीति दिखाई देती,
विज्ञों की वाणी नहीं सुनाई देती।

प्रतिकार किए बिन शान्ति नहीं पाता है,
जिसके कारण पतनोन्मुख हो जाता है,
लेकिन जो नर हो सच में वीर यशस्वी,
साहसी धीर मतिमान बली तेजस्वी।

जो पुरुष वास्तविक गुण-निधान होता है,
उसका स्वभाव सागर समान होता है,
यदि न्याय हेतु वह करे क्रोध को धारण,
तो क्षमा-दया भी हैं उसके आभूषण।

अपमान अनल में तो वह भी जलता है,
पर चक्र सुदर्शन सौ गिनकर चलता है,
तुम वीर तथा कायर को यूँ पहचानो,
दोनों के मध्य बड़ा अन्तर यह मानो।

इब्राहिम भी सच्चा साहसी नहीं था,
उर में उसके वीरत्व न शेष कहीं था,
उच्चाधिकारियों से अपमानित होकर,
हँसता रहता था स्वाभिमान को खोकर।

अंग्रेजी गाली शीश झुका सहता था,
सौ-सौ बातें भी सुनकर चुप रहता था,
शिवपूजन द्वारा सत्य किन्तु कह जाना,
हो गया असम्भव उसे सहन कर पाना।

वह मान रहा था इसे अनादर भारी,
कहता था धूमिल हुई प्रतिष्ठा सारी,
वह सोच रहा था 'बदल गया युग कितना?
कैसे बढ़ गया गुलामों का मन इतना?

आँधी का पथ ये तिनके रोक रहे हैं,
जुगनू मिलकर सूरज को टोक रहे हैं,
वन छोड़ शहर की ओर चले गीदड़ सब,
उग आए देखो पंख चीटियों के अब।

ये भूल गए लक्षण यह नहीं प्रगति का,
संकेत नहीं उत्थान और उन्नति का,
है बल्कि चिह्न होने वाली दुर्गति का,
सन्निकट आ रहे क्रूर काल की गति का।

विष यही निरन्तर अन्तर में भरता था,
उसको केवल प्रतिशोध दीख पड़ता था,
इसलिए तीव्र गति से गाजीपुर जा कर,
सब जिलाधिकारी मुनरो को समझाकर।

अति शीघ्र लौट तहसील-भवन पर आया,
अपना इच्छित आदेश साथ में लाया,
"तहसील भवन के निकट न जाए कोई,
यूनियन जैक पर आँच न आए कोई।

"यदि उपद्रवी कोई प्रांगण में आए,
तो सावधान जीवित न लौटने पाए,"
आज्ञा-पालन की हुई व्यवस्था सारी,
तहसील-भवन पर फौज आ गई भारी।

केदार सिंह दारोगा अत्याचारी,
होकर नियुक्त आया था सैन्य प्रभारी,
संतुष्ट हुआ करके समस्त तैयारी,
ज्यों जाल बिछा बैठा निर्दयी शिकारी।

अपलक नियति निहारती, होगी किसकी हार।
देश-प्रेम उस पार है, दम्भ खड़ा इस पार।।

प्रयाण

विद्यालय पहुँचे इधर, जब वे दोनों मीत।
गूँज रहे थे तब वहाँ, देशभक्ति के गीत।

नभ में भुजा उठा-उठा, जन समुदाय अपार।
जन्मभूमि की कर रहा, था प्रमुदित जयकार।

सभा मध्य में हो खड़े, भर-भर कर हुंकार।
वीर ऋषीश्वर कर रहे, थे ऊर्जा संचार।।

"हे मातृभूमि के आवाहन पर, आत्मार्पण को एकत्रित,
सर्वोच्च लक्ष्य की प्राप्ति हेतु, सर्वस्व त्याग को संकल्पित।
निर्भय निशंक निश्छल वीरों! वीरता प्रणम्य तुम्हारी है,
उन्माद प्रणम्य तुम्हारा है, उग्रता प्रणम्य तुम्हारी है।"

"प्रतिबिम्ब काल भैरव के तुम, तुम सब कृतांत के मनुज रूप,
अंजनीपुत्र से वेगवान, साक्षात् प्रभंजन के स्वरूप।
तुम पार्थ सदृश हो पराक्रमी, तुम भीमसेन से शक्तिमान,
प्रत्यक्ष सूर्य से तेजवंत, तुम अनलमुखी गिरि के समान।"

"तुमने ही लाल पके फल के, धोखे में सूरज निगला है,
करतल से पर्वत पीसे हैं, नदियों के पथ को बदला है।
बातों-बातों में सागर की, छाती पर सेतु बनाया है,
अपने पौरुष से तुमने ही, धरती पर स्वर्ग बुलाया है।"

"जिनकी गौरव-गाथाओं को, इतिहास गर्व से गाता है,
जिनके जयघोषों को अम्बर, अभिमान सहित दुहराता है,
ये दसों-दिशाएँ सुनती हैं, सादर जिनके आदेशों को,
हर्षित होकर पहुँचाते हैं, बादल जिनके सन्देशों को।"

"नभचुम्बी गिरिवर भी जिनको, आदर से शीश झुकाते हैं,
सातों समुद्र अँजुरी में भर, जो क्षण भर में पी जाते हैं,
जिनके रथ उनकी मंजिल तक, आँधियाँ स्वयं पहुँचाती हैं,
जिनके विक्रम के गीत पुलक, तारावलियाँ नित गाती हैं।"

"पशुवत मानव को संस्कृति का, अध्याय पढ़ाया है जिसने,
सम्पूर्ण जगत को गुरु समान, सतपंथ बताया है जिसने,
वह जग के नेता तुम ही हो, सन्मार्ग प्रणेता तुम ही हो,
हे ज्ञान-बुद्धि-बल के आगर!ब्रह्मांड विजेता तुम ही हो।"

यह सुनकर कोई चिल्लाया, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"
शत-शत कंठों ने दुहराया, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"
गंगा लहरों में लहराई, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"
नभमण्डल से प्रतिध्वनि आई, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"

मिलकर गरजे घन-तड़ित-पवन, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"
बोला वसुंधरा का कण-कण, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"
शिवपूजन ने भी ललकारा, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"
हुंकार उठा प्रांगण सारा, "हाँ हम ही हैं, हाँ हम ही हैं।"

"तो अब विलम्ब का कारण क्या?"-गूँजी ऋषीश की फिर दहाड़,
विस्मृत प्रताप वह स्मरण करो, अब जागो फिर से एक बार।
आलस्य त्याग उठकर देखो, नव अरुणोदय की लाली को,
तम को हरती, नभ में चढ़ती, आज़ादी की उजियाली को।

"जागो वीरों अब भारत में, आने वाला है नव प्रभात,
नव खगकुल-रव, नव भ्रमर-वृन्द, नव शतदल, नूतन पारिजात।
नव किसलय, नव कलिका-लतिका, नव तुहिन, नवल कल-कल निनाद,
नव परिमल, नव मलयज समीर, कुक्कुट का नूतन हर्षनाद।"

"नूतन विचार-नव आशाएँ, नव लक्ष्य और संधान नए,
कर रहे प्रतीक्षा हम सबकी, नव उन्नति के सोपान नए।
सूरज स्वराज्य का निकलेगा, कुछ पल की केवल रात बची,
गोरे-निशाचरों की देखो, गिनती भर शेष जमात बची।"

"होगा प्रकाश आसन-किरीट, आभा विहीन हो जाएँगे,
भारत के जन ही मिलजुल कर, भारत पर राज चलाएँगे।
मिट जाएगा तम जनित भेद, धर्मों के बन्धन टूटेंगे,
हम सब भारत के लोग जाति, के बंदीगृह से छूटेंगे।"

"होगा न बड़ा-छोटा कोई, खंदक सारे पट जाएँगे,
महिला-किसान-मजदूर-दलित, अधिकार बराबर पाएँगे।
हिमगिरि से लेकर वारिधि तक, आलोक सुनहला छाएगा,
यह दिव्य देश जग में फिर से, स्वर्णिम-चिड़िया कहलाएगा।"

"शैथिल्य तजो! आँखें खोलो! हो चुकी प्रतीक्षा अब पूरी,
आ गई निकट मंज़िल अपनी, बस कुछ क़दमों की है दूरी।
मिलकर आओ हम सभी चलें, अर्चन अरुणोदय का करने,
पूजन का अर्घ्य चढ़ाने को, निज रक्त अंजली में भरने।"

"आओ तैयारी पूर्ण करें, शुभ अवसर के अभिनन्दन की,
प्राणों के पुष्प चढ़ा करके, स्वातंत्र्य-सूर्य के वन्दन की।
यह सुनकर बिजली दौड़ गई, हर सुनने वाले के तन में,
चहुँओर मचा घनघोर शोर, शाला के विस्तृत प्रांगण में।"

नभ से ज्यों लड़ियाँ टूट पड़ीं, छर-छर-छर मोती छहर उठे,
उनको निज तन पर सजा वीर, भुजदण्ड उठाकर घहर उठे।
अंग्रेजों भारत छोड़ो का, कोई नारा दुहराता था,
कोई गाँधी-आजाद-भगत की, जय जयकार लगाता था।

कोई उत्साह सहित हाथों में, पकड़ा ध्वज लहराता था,
मुट्ठियाँ तान कोई अम्बर में, 'इन्कलाब' चिल्लाता था।
उद्यत थे सभी सहर्ष मारने, या, मरने को तन मन से,
उत्साह दिलों का देख कहा, नारायण ने शिवपूजन से।

"आ चुके सभी आने वाले, भाई! किसलिए रुके हो अब?
क्यों देर अकारण करते हो, तैयारी है जब पूरी सब।
कहते हैं शुभ को शीघ्र करे, जो नर, उसका हित होता है,
पा सकता है वह लक्ष्य नहीं, जो व्यर्थ सुअवसर खोता है।"

"है उचित समय जन-जन कुछ भी, कर जाने को उत्कंठित है,
प्रस्थान करो अति शीघ्र अतः, क्षण भर विलम्ब भी अनुचित है।"
नारायण के विचार सुनकर, शिवपूजन ने हुंकार भरी,
"हो जाओ सावधान वीरो, आ गई निकट वह पुण्य घड़ी।"

"अब अपने इन उद्गारों को, साकार हमें करना होगा,
बलिवेदी रूपी आकष पर, अपना पौरुष कसना होगा।
अविलम्ब चलो प्रस्थान करें, कर्तव्य टेरता है हमको,
हम सब के जीवन का अदृश्य, भवितव्य टेरता है हमको।"

इतना कह कर चल पड़ा वीर, भारत माता का यश गाते,
पीछे-पीछे बढ़ चला गाँव, अपनी किस्मत पर इतराते।
जलबिन्दु-पुष्प बरसा करती, अभिनन्दन मेघावली घनी,
लाठी डंडों से सज्जित हो, चल पड़ी झूम लघु कृषक-अनी।

जगदम्ब भगवती की जय-जय, से, गूँज उठे नभ-धरा-अतल,
चल पड़े वीर सर बाँध कफ़न, मन में भर साहस दृढ़-अविचल।
वे तिलक-बोस के सपनों को, मिलकर करने साकार चले,
छीनने कुटिल अंग्रेजों से, निज जन्मसिद्ध अधिकार चले।

"हे महादेव प्रलयंकर शिव! हे शूलपाणि! तेरी जय हो,
हे रुद्र शुभाशिष् जो तेरा, मिल जाए तो किसको भय हो?
हे माँ कामाख्या तेरे सुत, गुण तेरे हँस-हँस गाते हैं,
यह तुच्छ भेंट स्वीकार करो, हम शीश चढ़ाने आते हैं।"

गाते-दुहराते मस्ती में, उत्साहित सीना तान चले,
दीपित ललाट, प्रज्ज्वलित नयन, अधरों पर ले मुस्कान चले।
कुछ ही दूरी पर गंगा का, पहला छाड़न सामने पड़ा,
ऊँची-ऊँची लहरों से जो, मानो पथ रोक समक्ष खड़ा।

'गंगा मइया की जय' कहकर, शिवपूजन कूद पड़े जल में,
पीछे हो गया हुजूम पार उस भागड़ से पल दो पल में।
उत्साह बढ़ा, कुछ और चले, आ गया शेरपुर खुर्द गाँव,
स्वागत को प्रस्तुत मिले जहाँ, नवयुवकों के दल ठाँव-ठाँव।

जगदीश-वंश नारायण सँग, श्यामू दादा-वशिष्ठ-बाढ़ू,
ऐसे सैकड़ों वीर जुड़कर, गाते चल दिए राग मारू।
जैसे-जैसे भारत छोड़ो की और तीव्र ललकार हुई,
वैसे-वैसे कारवाँ बढ़ा संख्या हजार के पार हुई।

आगे छाड़न दूसरा पड़ा, जो था पहले से भी विशाल,
रुक गए देखकर सभी, रूप, ऊँची लहरों का अति कराल।
सुनकर प्रवाह का घोर रोर, वे धीर वीर भी थिर न रहे,
तब शिवपूजन ने सुरसरि को, करके प्रणाम यह वचन कहे।

"तट वासी पुत्रों पर तुमने, अगणित अहसान किए हैं माँ,
जननी के पय से अधिक नीर, हम तेरा पान किए हैं माँ।
यह अन्तिम कृपा और कर दे, हम सबको पार उतरना है,
कर ले अपनी यह भुजा शान्त, बस यही निवेदन करना है।"

"रह जाएगी पत आज अगर, आशीष तुम्हारा पाऊँगा,
केवल इस बार तार दे माँ, लौट कर नहीं मैं आऊँगा।"
तब चमत्कार सबने देखा, थम गया पवन का वेग प्रबल,
हो गईं शान्त लहरें तत्क्षण, हो गए पार सब सँभल-सँभल।

उस पार पहुँच शिवपूजन ने, सुरसरिता को फिर नमन किया,
जयकार लगाकर गंगा की, सबने प्रमुदित मन गमन किया।
पहुँचा जत्था कुण्डेसर तो, 'चन्दनी' और 'सोनाड़ी' से,
कुछ उत्साहित नवयुवक मिले, आ करके बारी-बारी से।

डेढ़ कोस की रह गई, दूरी केवल शेष।
निकट आ गया लक्ष्य अब, ऊर्जा बढ़ी विशेष।।

बलिदानी जत्था चला, रचने नव इतिहास।
क्षण भर में पहुँचे सभी, सुरतापुर के पास।।

विमर्श

दीर्घ श्वास लेकर रुका, पल भर केतु महान।
और पुनः कहने लगा, आगे का व्याख्यान।।

सुरतापुर से कुछ ही आगे, एक अत्यधिक वृहद सघन,
मंजुल वल्लरियों से गुंठित, पड़ता था सुंदर उपवन।
महुआ-कटहल-आम आदि के, जिसमें वृक्ष सुहाते थे.
जिन पर बैठे खग पथिकों को, राग मल्हार सुनाते थे।

पुष्पित आँछी की खुशबू से, बोझिल कुछ सकुचाई-सी,
चलती थी मृदु-मन्द हवा उस, बगिया से अलसाई-सी।
नभ-गंगा से घट भर-भरकर, घन उड़ेलते जाते थे,
जिसमें नहा-नहाकर तरुवर, नित्य नई छवि पाते थे।

स्वस्थ साँवले तने द्रुमों के, ऐसे लगते थे अभिराम,
हरे रंग की पगड़ी सिर पर, बाँध खड़े हों ज्यों घनश्याम।
गिलहरियों के झुण्ड कहीं पर, खेल निराले करते थे,
कहीं शशक-मूषक निर्भय हो, चरते और विचरते थे।

नैन मूँद निश्चल बैठे थे, भीगे कपि कुछ इसी प्रकार,
ज्यों बैठे हों सिद्ध-तपस्वी, त्याग-मोह-माया संसार।
उसी बाग के निकट पहुँचकर, आया नव विचार मन में,
जिससे शिवपूजन ने सबको, रोक दिया उस उपवन में।

वहाँ भूमि पर एक आम का, शुष्क वृक्ष था गिरा हुआ,
जिसके स्थूल तने के ऊपर, उछल वीर वह खड़ा हुआ।
'अब विलम्ब क्यों?' प्रश्न यही था, एक साथ सबने पूछा,
'बातों से कितना भी भर लो, किन्तु रहेगा घट छूछा।'

'बहती सरिता के प्रवाह पर, रोक लगाना उचित नहीं,
अब मत रुको बन्धु बातों में, समय गँवाना उचित नहीं।'

सुन शिवपूजन ने विनम्रता, से कहना आरम्भ किया,
हुई शांति कोलाहल ने तब, धीरज का अवलम्ब लिया।
"अन्तिम बार निवेदन है, मित्रो कृपया स्वीकार करो,
धैर्य रखो, सुन लो, पलभर रुक जाओ और विचार करो।"

"यह विचार इसलिए कि कोई, चूक न बाकी रह पाए,
और इसलिए ताकि जोश में, गलत कदम मत उठ जाए।
यह विचार इसलिए कि भावी, हमसे नहीं कलंकित हो,
बल्कि हमारा कर्म समय के, अमिट पृष्ठ पर अंकित हो।"

"सोचो तनिक महात्मा गाँधी जैसा सत्यनिष्ठ-त्यागी,
दृढ-निश्चयी साहसी-सच्चित, सात्विक-ज्ञानी वैरागी।
महापुरुष जो कल्पों में ले, जन्म धरा पर आता है,
और भ्रमित मानव को उसका, शिवमय पन्थ दिखाता है।"

"जिसका मन विशाल सागर है, तन देवालय जैसा है,
जो अपने सिद्धांतों के प्रति, अटल हिमालय जैसा है।"

"जिसका मत है– 'होती है वह सिद्धि, श्रेष्ठ शुचि सार्थक तब।
लक्ष्य प्राप्ति का मार्ग लक्ष्य के, जैसा ही सुन्दर हो जब।'
ऐसे महामना अपना प्रण, कहो भला क्या तोड़ेंगे?
क्या विघ्नों से हार, अहिंसा, के पथ को वे छोड़ेंगे?"

"हिम का भार कभी हिमगिरि को, क्या छोटा कर पाएगा?
ओस गिरे कितनी भी पर क्या, पुष्पक सर भर जाएगा?
सूरज कितना भी दहके पर, सागर नहीं सुखा सकता।
कितना भी हो तीव्र प्रभंजन, पर्वत नहीं उड़ा सकता।"

"ऐसा कोई विघ्न कहाँ जो, सूरज का पथ मोड़ सके?
ऐसा कोई विघ्न कहाँ जो धीर पुरुष को तोड़ सके?
अतः मुझे पूरा प्रत्यय है, गाँधी जी के निश्चय पर।
उनकी इच्छाशक्ति प्रबल पर, धीरज अविचल अक्षय पर।"

"मुझको है विश्वास कि वे पग, पीछे मोड़ नहीं सकते।
कुछ भी हो पर सत्य-अहिंसा का व्रत तोड़ नहीं सकते।
आक्रोशित हो अंग्रेजों को, जो संबोधन उनका है।
सारे भारत को बॉम्बे से, जो उद्बोधन उनका है।"

"हम सबने अभिप्राय सर्वथा, उसका गलत निकाल लिया।
उनके 'करो-मरो' को भ्रमवश, 'मारो-मारो' मान लिया।
हमने समझा 'भारत छोड़ो' धमकी है रणगर्जन है।
भूल हुई पर मित्रो हमसे, वह भी सत्य-निवेदन है।"

"इस भ्रम के वश होकर यदि हम, हिंसा को अपनाएँगे।
तो गाँधी जी के सुविचारों, पर ही खड्ग उठाएँगे।
इसीलिए करबद्ध निवेदन, करता हूँ स्वीकार करें।
साथ लिए हथियार सभी जन, कृपया यहीं कहीं रख दें।"

"यद्यपि अग्निमुखी बन्दूकें, मार्ग हमारा रोकेंगी।
संगीनें तीखी नोकों से, धमकाएँगी टोकेंगी।
फिर भी सत्याग्रही रूप में, ही हम सारे जाएँगे।
वार सहेंगे, प्राण तजेंगे, किन्तु न हाथ उठाएँगे।"

"याद रहे, कोई सिपाहियों को, कंकड़ भी मारेगा।
तो शिवपूजन के सीने में, वह तलवार उतारेगा।"
सन्न रह गई सभा अचानक, सुनकर इस परिवर्तन को।
"भला अहिंसा रोक सकेगी, क्रूर काल के नर्तन को?"

"हाथ बाँध कर कायर-से, हम केवल वार सहेंगे क्यों?
क्षमता-बल-साहस है तन में, फिर चुपचाप रहेंगे क्यों?
इतनी तैयारी क्यों की जब, नाव रेत पर खेना था?
क्या मुँहतोड़ जवाब यही उस, इब्राहिम को देना था?"

"में-में करते हम न कटेंगे, अजों और भेड़ों जैसे।
बल्कि पराक्रम दिखलाएँगे, टूटेंगे शेरों जैसे।
होगा हर्ष हमें यदि लड़कर, गिर जाएँगे वहीं कहीं।
किन्तु क्लीव के जैसे मरना, हमें कभी स्वीकार नहीं।"

"ये लाठियाँ-कुठार-गँड़ासे, भाले मित्र हमारे हैं।
घर-खलिहान-खेत में रहते, सदा साथ ये सारे हैं।
रहते हैं सर्वत्र छाँव-से, भला इन्हें कैसे तज दें?
आज अनाथ बनाकर इनको, कहो कहीं कैसे रख दें?"

"रक़्त पियें छककर अरि का ये, भाग्योदय इनका भी हो।
आज न रोको इनको, जी भर, होली इन्हें मनाने दो।"
उठने लगे विरोधी स्वर यों, तुमुल वाटिका में छाया।
बड़ी कठिनता से सबको फिर, शिवपूजन ने समझाया।

बोला "आप ठीक कहते हैं, लेकिन तनिक विचार करें।
अति उत्साहित हो अनीति पर, भूले से भी पग न धरें।
कैसे भी हालात बनें पर, ध्यान हमें रखना होगा।
गाँधी जी के उपदेशों का, मान हमें रखना होगा।"

"वे कहते हैं, अधिकारों के, लिए सदा ही सजग रहो।
अनाचार के आगे झुककर, नहीं कभी अन्याय सहो।
किन्तु याद रखना कि पाप का, उत्तर पाप नहीं होता।
कीचड़ कितना भी कीचड़ से, धो लें साफ नहीं होता।"

"प्राण प्राण के बदले में, हर लेना, नहीं शूरता है।
बल्कि अहिंसक सत्याग्रह ही, सच्ची श्रेष्ठ वीरता है।
इन कथनों को आत्मसात कर, जब चर्या में लाएँगे।
तब जाकर हम गाँधी जी के, सच्चे भक्त कहाएँगे।"

"क्या जवाब देना इब्राहिम, को? वह बन्धु हमारा है।
जैसे हम जननी को प्यारे, वैसे वह भी प्यारा है।
वहाँ खड़ा हर एक सिपाही, भी अपना ही भाई है।
माना वे पथ भ्रष्ट हुए पर, उनसे नहीं लड़ाई है।"

"वे अनीतिरत हैं, अंधे हैं, द्रोही जन्मभूमि के हैं।
उनको है अभिमान कि जग में, बलशाली केवल वे हैं।
वे कहते हैं-बन्दूकों के, भय से ही भव चलता है।
वे कहते हैं-खड्ग तले ही, प्रेम शान्ति से पलता है।"

"वे कहते हैं-'अत्याचारी, को जग आदर देता है।
उसके आदेशों को झुक कर, सिर-माथे पर लेता है।
उनका मत है रक़्त-पिपासित, को ही यश भी मिलता है।
शासन रूपी रुचिर पुष्प भी, रुधिर कीच में खिलता है।"

"नहीं ज्ञात है उन्हें कि उनकी, क्रूर बुद्धि का भ्रम है यह।
सीमाओं का उल्लंघन है, मानवता का दुख दुस्सह।
मानव मानव पर यूँ ही यदि, शासन करना चाहेगा।
दृष्टिहीन हो अगम शिखर के, ऊपर चढ़ना चाहेगा।"

दुष्प्रवृति यह मानव मन से, शीघ्र नहीं यदि जाएगी।
तो निश्चय ही एक दिवस यह, धरा नाश को पाएगी।
पट जाएगी मनुज-शवों से, तिल-तिल नगरों-गाँवों में।
जल की जगह प्रवाहित होगा, उष्ण रक़्त सरिताओं में।

“आएगा वह दिन भू पर जब, नर का लेश नहीं होगा।
मृत्यु नृत्य सर्वत्र करेगी, जीवन शेष नहीं होगा।
इसीलिए कहता हूँ- ‘अपनी, उनसे नहीं लड़ाई है।
क्योंकि सभी है भ्रमित, सभी पर घटा कुमति की छाई है।”

इसी कुमति ने देश-देश पर, हमले अगणित बार किये।
इस कुभाव ने ही दुनिया में, कोटि-कोटि नर मार दिये।
भारत पर भी आज इसी के, कारण यह दुख आया है।
अंग्रेजों ने नहीं, ‘इसी’ ने हमें गुलाम बनाया है।

अतः हमें सबसे पहले इन, दुर्भावों से लड़ना है।
तन से प्राण नहीं, मति से इस, भारी भ्रम को हरना है।
जिससे नर में नरता आए, हिंसक अत्याचार न हो।
मानुष पर मानुष का कोई, अमानुषिक अधिकार न हो।

सभी रहें आजाद, अभय हो, मानवता इस धरती पर।
फैले सुख के फल से पूरित, स्नेह-लता इस धरती पर।
मित्रों! हिंसा से हिंसा का, अन्त नहीं हो पाएगा।
बल्कि भूमि पर भार पाप का, संतत बढ़ता जाएगा।

अतः प्रार्थना है मेरी, सब अपने शस्त्र यहीं रख दें।
और अहिंसा की लाठी ले, पथ प्रशस्त पर शीघ्र बढ़ें।

“झुकें नहीं जालिम के आगे, गोली उसे चलाने दें,
हम कर्तव्य निभाएँ अपना, उसको फर्ज निभानें दें।”

शिवपूजन के उद्बोधन ने, सम्मोहन का काम किया,
सुनते ही ज्यादातर लोगों ने, शस्त्रों को त्याग दिया।
कुछ लोगों को किन्तु निवेदन, उसका यह स्वीकार न था,
उनमें कोई भी बलि पशु-सा, मरने को तैयार न था।

उनका मत था- ‘अधम प्रार्थना, सुनकर कहाँ सुधरता है?
दूध पिलाओ जितना, विषधर, उतना गरल उगलता है।
दुष्प्रवृत्ति से ग्रसित दुष्ट का, मात्र दण्ड उपचारक है,
और नीच को नमन स्वयं के, लिए बड़ा क्षतिकारक है।’

इस प्रकार बँट गए लोग, हो गया शुरू मतभेद वहाँ,
साथ चले थे जिसको लेकर, एका वह रह गई कहाँ?
तब वरिष्ठ जन आगे आए, बढ़ता देख विवाद अपार,
‘नरम-गरम’ इन दो पाटों के, मध्य मार्ग पर किया विचार।

निश्चय हुआ-‘किसी द्रुतगामी, को फौरन भेजा जाए,
जो जाकर तहसील भवन पर, डटे सिपाही गिन आए।
उस संख्यानुसार दो जत्थों, में सारे बँट जाएँगे,
इस उपाय से इस दुविधा को, हम अविलम्ब मिटाएँगे।

पहला जत्था शिव पूजन की, अगुवाई में जाएगा।
यह दल ही तहसील भवन के, ऊपर ध्वज फहराएगा।
सत्याग्रही इसी में मिलकर, मुख्य मार्ग से जाएँगे।
निज नारों से नगरवासियों, में नव जागृति लाएँगे।

दूजे दल में युवक रहेंगे, बल की थाह न हो जिनकी।
दुगनी संख्या सिपाहियों की, संख्या से होगी इनकी।
ये तहसील-भवन पर पीछे, के रस्ते से जाएँगे।
इन्हें तिलेश्वर राय अग्रणी, होकर मार्ग दिखाएँगे।

पहले दल से पहले यह दल ही, मंजिल पर पहुँचेगा।
और प्रतीक्षा में सतर्कता, सहित शांत-छिप बैठेगा।
पहुँचेंगे सामने लक्ष्य के, जब पहले दल के साथी।
दृष्टि उन्हीं की ओर रहेगी, तब अंग्रेजी सेना की।

उसी समय संकेत प्राप्त कर, ये पीछे से जाएँगे।
यह अनपेक्षित होगा, सैनिक सजग नहीं हो पाएँगे।
विद्युत गति से दो जन मिलकर, एक सिपाही पकडेंगे।
बिना हानि पहुँचाए उसके, हथियारों को जकड़ेंगे।

इस प्रकार सैनिक-क्षमताएँ, बन्धन में बँध जाएँगी।
संगीनें होगीं अशक्त, गोलियाँ नहीं चल पाएँगी।
बड़ी सरलता से तब हम निज, प्रण पूरा कर पाएँगे।
चढ़ तहसील-भवन के ऊपर, अपना ध्वज फहराएँगे।

इससे सत्य-अहिंसा का व्रत, भी न टूटने पाएगा।
बिना रक्त की बूँद गिरे ही, लक्ष्य प्राप्त हो जाएगा।
मान रहेगा यूँ शिवपूजन के, आशय निश्छल का भी।
और प्रदर्शन हो जाएगा, इन वीरों के बल का भी।

यह विचार दोनों पक्षों के, लोगों के मन को भाया।
तत्क्षण सबने विश्वनाथ को, पता लगाने दौड़ाया।
पंख लगे उसके पैरों में, फिर लगना था समय कहाँ।
लौट बताया उसने, सैनिक, संख्या है चालीस वहाँ।

मुख्यद्वार पर ही सभी, सैनिक हैं तैयार।
इब्राहिम के साथ है, ठाकुर शिव केदार।

बलिदान

मुझको उत्सुक जानकर, थिरक उठी मुस्कान।
किया तिरंगे ने शुरू, आगे का आख्यान।

तहसीलदार की तैयारी का, विश्वनाथ ने हाल कहा।
सुन उबल उठे जाँबाज सभी, है कहाँ विघ्न कुछ शेष रहा।
दोपहर हुई दिन चढ़ आया, पल भर भी मत अब देर करो।
अब नहीं नीति की बात करो, उत्पन्न नहीं अवसेर करो।

ले उठो शरासन साहस का, प्रत्यक्ष लक्ष्य संधान करो।
सब एक साथ हुंकार उठे, 'प्रस्थान करो-प्रस्थान करो।'
इस बीच ऋषीश्वर खड़ा हुआ, गूँजा गंभीर मेघ गर्जन।
मैं प्रस्तुत हूँ बंदूकों का, पहले करने को अभिनंदन।

मेरी इच्छा है सर्वप्रथम, संगीनों से मैं टकराऊँ।
सम्मिलित हरावल दस्ते में, हो साथ तिलेश्वर के जाऊँ।
योजना शीघ्र साकार करो, अब व्यर्थ न अवसर खोना है।
चालीस सिपाही डटे वहाँ, इस दल को अस्सी होना है।

इस दल को अब चाहिए मात्र अठहत्तर निर्भय नौजवान,
जो हों पवितन से महाबली, अंजनी-पुत्र से वेगवान।
संगीनों को सद्भावों से, वश में करना आसान नहीं,
मैं नहीं कहूँगा अतः कि, इस पथ पर होंगे व्यवधान नहीं।

"इसलिए जिसे अंगारे भी, फूलों-से प्यारे लगते हों,
आत्मार्पण के अक्षय प्रदीप, जिसके अन्तस् में जगते हों,
जो काल-वृक्ष के वृन्तों पर, बनकर प्रसून खिलना चाहे,
निज सत्व भस्म कर मातृभूमि, की, मिट्टी में मिलना चाहे।"

"साक्षात मृत्यु को देख नहीं जो, रंच मात्र भी घबराए,
जिसको प्राणों का मोह न हो, वह साथ हमारे आ जाए।"
यह आवाहन सुन उपवन में, जय-जय की ध्वनि चहुओर जगी।
हो गए सभी तत्पर तुरन्त, 'मैं भी-मैं भी' की होड़ लगी।

निज मति से परख-परख उनके, बल-साहस को पहचान लिया।
आगे बढ़ विश्वनाथ ने तब, कुछ नवयुवकों का नाम लिया।
रामाश्रय-सीताराम राय, श्यामूदादा औ रामबदन।
नारायण राय प्रसिद्ध मल्ल, राजा-वशिष्ठ-जगदीश किशन।

गोपाल-महेन्द्र-कृपाशंकर उत्साहित वंश राय निकले।
शेरपुर खुर्द के वंश अपर, संग यादव रामनरेश चले।
कितनों के नाम गिनाऊँ मैं, सब एक-एक से बली वीर।
जैसे पौरुष प्रत्यक्ष खड़ा, धारण अनेक करके शरीर।

नवयुवक कान्ति जिनके तन की, शिवसुत षड्वदन सरीखी थी।
थे रामबदन से नवकिशोर, जिनकी न मसें तक भींगी थीं।
ले विदा, छोड़कर मुख्य मार्ग, उत्साहित अपरम्पार चला।
अस्सी शूरों का यह जत्था, जननी की कर जयकार चला।

डूबे खेतों के मध्य-मध्य, वे पकड़ लीक की छोर चले।
जल-कीच बीच पद रेख खींच, तहसील भवन की ओर चले।
शिवपूजन करके विदा उन्हें, खुद मुख्य मार्ग की ओर चला।
पीछे चल पड़े असंख्य कदम, दल उस उपवन को छोड़ चला।

शत-शत कण्ठों के गर्जन से, गुंजायमान हो उठा गगन।
जयकार महात्मा गाँधी की, कर चले सभी उत्साहित मन।
गाते स्वराज्य के गीत झूम, मस्ती में जग की सुध खोकर।
जोड़ते मार्ग में लोगों को, ये चले शाहनिंदा होकर।

जाँबाज जुड़े गिनती भर के, कौतुकदर्शी आए अनेक।
तब तक सिपाहियों की गाड़ी, पीछे-पीछे आ गई एक।
देखकर पुलिस कोई बोला, चलनी है आज वहाँ गोली।
तहसील रक्तरंजित होगी, बंदूकें खेलेंगी होली।

सुन काँपे सभी तमाशबीन, जैसे समक्ष हो मृत्यु अभी।
थरथरा उठे कायर, उनके, देवता कूच कर गए सभी।
आ गए ज़रूरी काम याद, सँकरी गलियाँ ताकने लगे।
अतिशीघ्र शीश पर पैरों को, रखकर दल से भागने लगे।

बेख़बर सभी से मंजिल पर, चढ़ता जाता था मस्ती में।
आगे जुलूस के शिवपूजन, बढ़ता जाता था मस्ती में।
बस एक वतन की आजादी, अतिरिक्त दूसरी चाह न थी।
है साथ कौन? भागे कितने? इसकी उसको परवाह न थी।

आ गया शीघ्र ही लक्ष्य निकट, दीखने लगा तहसील-भवन।
यूनियन जैक उड़ता देखा, हो गई तेज़ दिल की धड़कन।
आँखों में धधक उठी ज्वाला, बिजली सी कौंध गई तन में।
चौगुनी चाल से बढ़े कदम, उत्साह असीम बढ़ा मन में।

अब सुनो कहानी उनकी जो, पीछे के पथ से आए थे।
देखकर हाल तहसील-भवन, का, वे ठिठके-भरमाए थे।
अनुमान हो गए गलत, बुद्धि, यह दृश्य देखकर चकराई।
पीछे चहारदीवारी पर, भी, भारी फौज नज़र आई।

बन्दूकें अपना मुँह खोले, स्वागत में थीं तैयार खड़ीं।
रक्तप संगीनें उम्मीदों का, पथ रोके सामने अड़ीं।
दारोगा शिव केदार लिए, पिस्तौल तभी आगे आया।
अपशब्दों की लग गई झड़ी, धमकाते स्वर में चिल्लाया।

"थम जाओ खबरदार सुन लो, तंबीह आखिरी यह मेरी।
तुम सबके सिर पर काल चढ़ा, दे रही मौत हँस-हँस फेरी।
लालायित हैं गोलियाँ आज, छाती का लोहू पीने को।
इसलिए वही आगे आए, जो बोझ समझ ले जीने को।"

धमकी सुनकर रुक गए सभी, बाधा का था यह रूप नया।
इस बीच हुआ संकेत बढ़ो! दूजा दस्ता भी पहुँच गया।
'अब क्या होगा?' दुविधा की यह चट्टान पड़ी सबकी मति पर।
सब एक दूसरे का मुखड़ा, देखने लगे प्रतिमा बनकर।

तब तक पीछे से गूँज उठी, जयकार भगवती माई की।
हो गए सभी चैतन्य पुनः, धधकीं लपटें तरुणाई की।
देखा मुड़कर तो भी भीड़ चीर, बढ़ रहे ऋषीश्वर थे आगे।
उल्का की ज्योति नक्षत्रों को, चीरती अचानक ज्यों जागे।

"जननी है जन्मभूमि अपनी, हर भारत वासी भाई है।
इसलिए किसी भी सैनिक से, हम सबकी नहीं लड़ाई है।
यह भूमि तुम्हारी भी तो है, तुम पर भी तो ऋण है इसका।
उस नर का जीना क्या जीना, हो देश गुलामी में जिसका।"

"हे बन्धु!बड़ी चतुराई से, हमको अंग्रेज लड़ाते हैं।
पद-वेतन देकर भाई से, भाई का शीश कटाते हैं।
पहचानो कुटिलों को जागो, उत्पन्न नहीं गतिरोध करो।
है जननी की सौगन्ध तुम्हें, आओ मिलकर सहयोग करो।"

यह अनुनय कर दारोगा संग, सब सिपाहियों से हाथ जोड़।
अनसुनी धमकियों को करता, बढ़ चला वीर तहसील ओर।
पीछे चल दिए सभी फिर से, गूँजने लगा नभ नारों से।
डोलने लगा तहसील-भवन मतवालों के हुंकारों से।

था खड़ा अचंभित दारोगा, ज्यों काठ उसे हो मार गया।
आत्मोत्सर्ग का शिखर देख, मानो वह भी था हार गया।
लेकिन प्राचीर फाँद कर जब, देखा कूदते ऋषीश्वर को।
जागा दानव अन्तर्मन का, जो सोया था बस क्षण भर को।

अवहेला देख धमकियों की, आँखों में रक़्त उतर आया।
आदेश सैनिकों को करता, वह गला फाड़ कर चिल्लाया।
'फायर' यह शब्द गूँजते ही, बन्दूकें भी गरजने लगी।
कालानल की चिनगियों सदृश, गोलियाँ वहाँ बरसने लगीं।

पर धन्य-धन्य वह वीर, नहीं, काँपे पल को भी पग उसके।
आहत होकर भी दौड़ पड़ा, भारत माता की जय कह के।
'मत मारो मेरे भाई' कह, दो बन्दूकों को पकड़ लिया।
पर इस मार्मिक विनती पर भी, क्रूरों ने नहीं विचार किया।

बिजली छूटी बन्दूकों से, छाती से बही रक़्त धारा।
होकर निष्प्राण गिरा योद्धा, ज्यों गिरे टूट नभ से तारा।
कुर्बानी देख ऋषीश्वर की, बिजली-सी कौंध गई तन में।
भय-शंका भूल हूह करते, घुस गए सभी उस प्रांगण में।

प्रण याद रहा उनको फिर भी, योजना सफल कर जाने का।
बन्दूकें छीन सैनिकों से, उनको गिरफ्त में लाने का।
इसलिए प्राण करतल पर रख, उद्देश्य प्राप्ति का हठ पाले।
साक्षात् मृत्यु की आँखों में, हो गए खड़े आँखें डाले।

हो लहूलुहान गोलियों से, संगीनों की झेलते मार।
शूरमा लगे गिरने क्रमशः, करते जय भारत की पुकार।
गिर गए वंश नारायण द्वय, बलिदान हो गया रामबदन।
बह चला रक्त धाराओं में, हो गया लाल तहसील भवन।

आहत होकर संगीनों से, नारायण अति बलवान गिरा।
हर गोली पर जयकार लगा, घायल हो सीताराम गिरा।
इस बीच झपट राजा-वशिष्ठ, चढ़ छत के ऊपर जा पहुँचे।
अंग्रेजी ध्वज झट से उखाड़, दोनों ने फेंक दिया नीचे।

धरती पर गिर यूनियन जैक, इस तरह सन गया कीचड़ में।
मानो इब्राहिम का सारा, अभिमान मिल गया कीचड़ में।
झपटीं गोलियाँ गिरे दोनों, ज्यों गिरें डाल से पुष्प युगल।
सो गए सदा के लिए वीर, ओढ़कर धरित्री का आँचल।

अपने प्रिय बंधु-बांधवों को, जब श्यामू ने गिरते देखा।
आज़ादी की आशाओं को, ऐसे तिल-तिल मरते देखा।
तिलमिला उठा लाचार, अश्रु, की झड़ी लग गई आँखों से।
सहसा बंदूकों की नलियां, मूँदने बढ़ा निज हाथों से।

सोचा भोले ने किसी तरह, यदि नली बंद हो जाएगी।
तो गोली प्राण नहीं लेगी, बंदूक नहीं चल पाएगी।
लेकिन मन के मृदु भावों को, गोलियाँ समझ कब पाती हैं।
वे तो चलतीं जिस ओर उधर, संदेश ध्वंस का लाती हैं।

रखते ही हाथ नली गरजी, गिर गई हथेली क्षत होकर।
पर कटे विहग-सा तड़प गिरा, श्यामू अचेत हो धरती पर।
यह दृश्य देख आक्रोशित हो, तेजी से रामनरेश बढ़ा।
जिसने गोली मारी थी उस, सैनिक के ऊपर झपट पड़ा।

उससे हथियार छीनने को, ज्यों हाथ बढ़ाया था उसने।
बंदूक चला दी थी त्यों ही, पीछे हटकर उस सैनिक ने।
गोली गर्दन को चीर गई, चेतना मात्र पल भर खोकर।
दोनों हाथों से गला थाम, गिर पड़ा चीख मूर्छित होकर।

फिर विद्युत गति से खड़ा हुआ, वह वीर उछल अगले ही क्षण।
घूरता सिपाही को दौड़ा, करता भीषण केहरि गर्जन।
आकण्ठ नहाया शोणित से, लगता था वह वीभत्स बड़ा।
कर रक्त पान दुःशासन का, जैसे हो भीम समक्ष खड़ा।

उसका वह भैरव रूप देख, भय से वह प्यादा काँप गया।
फँस गए कंठ में प्राण, शीघ्र, बंदूक फेंक कर भाग गया।
इस बीच सिपाही एक और, जगदीश राय ने पकड़ लिया।
बंदूक छीन कर उठा उसे, धरती के ऊपर पटक दिया।

तब तक सिपाहियों की गाड़ी, जो पहले दल के पीछे थी।
वह भी जुलूस के साथ-साथ, चलती परिसर में आ पहुँची।
जब बढ़ी सैनिकों की संख्या, आपूर्ति हुई हथियारों की।
जब दुगनी गति से शुरू हुई, बरसात पुनः अंगारों की।

तब जान गए आगे बढ़कर, वे सभी जान से जाएँगे।
इस पथ पर प्राण लुटाकर भी, मंज़िल न प्राप्त कर पाएँगे।
वे समझ गए सद्भावों से, हिंसा न कभी भी हारेगी।
तुम एक गाल सामने करो, वह दूजे पर भी मारेगी।

हालात देखकर बचे लोग, आक्रोश त्याग कर सँभल गए।
दोनों बंदूकें उठा शीघ्र, परिसर से बाहर निकल गए।
शिवपूजन के संकल्पों को, वीरों ने खूब निभाया था।
मर मिटे हटे पीछे लेकिन, कंकड़ तक नहीं उठाया था।

यह देख तड़प रो पड़ा मिहिर, जा छिपा अभ्र के आँचल में।
बुझ गई आग, बह चला रक्त, मिलकर नैनों के मृदु जल में।
इतना कहते-कहते ध्वज की, आँखों में पानी भर आया।
रुँध गया कंठ मुख पर छाई, दुख भरी क्षुब्धता की छाया।

बोला-लो हृदय थाम अपना, आगे की कथा सुनाता हूँ।
जो मुख्य मार्ग से आए थे, उनका अब हाल बताता हूँ।
मानव भविष्य को लेकर नित, सपने अनगिनत सजाता है।
है किंतु नियति के मन में क्या, यह कोई समझ न पाता है।

पाने को दिव्य लक्ष्य उसने, जितने भी पूत प्रयास किए।
शिवपूजन के सारे प्रयत्न, वे एक-एक कर विफल हुए।
थे साथ चले उसके पीछे, शत-शत उत्साहित पग अविचल।
उर में लेकर साहस अदम्य, धीरज अटूट, उत्साह अटल।

इस पुण्य पंथ पर उनमें से, बलिदान हो गए कुछ हँसकर।
माँ की पूजा में बन प्रसून, कर गए स्वयं को न्यौछावर।
डगमगा गए कुछ मध्य मार्ग, में, ही विपत्तियों से डरकर।
जो शेष बचे वे छोड़ गए, गर्जना गोलियों की सुनकर।

रह गया अकेला ही पथ पर, थी किंतु न कोई फिक्र उसे।
गूँजता निरंतर रहा गगन, उत्साह भरे जयकारों से।
जैसे उदयाचल से सूरज, नभ पर क्षण-क्षण चढ़ता जाए।
कोई प्रपात ज्यों पर्वत से, गिरकर पथ पर बढ़ता जाए।

वैसे ही वह साहसी अडिग, चलता जाता था निज पथ पर।
करने की या मिट जाने की, धुन थी सवार उसके ऊपर।
वह दर्शनीय उत्साह देख, मैं फूला नहीं समाता था।
उसके कंधों पर टिक सगर्व, उड़ता लहराता जाता था।

क्षण भर में ही आया समक्ष, तहसील-भवन का मुख्य द्वार।
अनगिनत सिपाही साथ लिए, था डटा जहाँ तहसीलदार।
शिवपूजन पर ज्यों पड़ी दृष्टि, लग गई आग उसके तन में।
एकाकी आता देख उसे, बोला उपहास भरे स्वर में।

“आओ-आओ हे महाबली! अभिनंदन की तैयारी है।
कल का दिन नाम तुम्हारे था, पर आज हमारी बारी है।
देखो संगीनें सज्जित हैं, हाथों में ले कुमकुम-रोली।
बंदूकों का ले सुभग थाल, आरती उतारेगी गोली।”

चहुँओर खड़े हैं हाथ जोड़, झुककर यमदूत इबादत में।
पग-पग पर बाँहें खोल खड़ी, है, मौत तुम्हारे स्वागत में।
पर यह क्या? बाकी कहाँ गए, बढ़बढ़ बातें करने वाले?
अपनी दहाड़ से ही बैरी के, प्राणों को हरने वाले?

"तुम भला अकेले झुंड छोड़, बलिवेदी पर चढ़ने आए?
औरों को वंचित करके खुद, यह पुण्य ग्रहण करने आए?
अफसोस किंतु तुमसे प्रवीर, जो इस धरती के बेटे हैं।
वे तुमसे भी पहले आकर, इसके उछंग में लेटे हैं।"

"इच्छा हो तो पीछे जाकर, उनके अंतिम दर्शन कर लो।
वे तो हो गए विदा जाओ, लाशों का आलिंगन कर लो।
उसके उपरांत अगर चाहो, तो अवसर तुमको देता हूँ।
दे अभयदान तुमसे कल का, अहसान चुकाए लेता हूँ।"

"नारे-वादे-प्रण-देशभक्ति, सम्मान आदि सब बिसराओ।
हठ छोड़ बचाओ प्राण और, चुपचाप लौटकर घर जाओ।"
तब हँसकर बोला शिवपूजन "नाहक ही वक्त गँवाते हो?"
या बार-बार कुछ कहने को, मुझको प्यारे उकसाते हो?

"अब छेड़ दिया है तो सुन लो, सबको है एक दिवस मरना।
जिस पर अपना अधिकार न हो, उसको खोने से क्या डरना।
जिस राह गए साथी मेरे, उस राह तुझे भी जाना है।
इस धरती के उछंग में ही, तुझको भी आश्रय पाना है।"

“हो सकता है उन लोगों से, कुछ अधिक वर्ष जी लोगे तुम।
जीवन-मधु के मादक प्याले, कुछ और अधिक पी लोगे तुम।
कुछ और अधिक सम्मानित पद, संपदा-प्रतिष्ठा पा लोगे।
सेवा विदेशियों की करके, सोने का महल बना लोगे।”

“पर याद रहे युगगाथा में, यह दिन जब-जब भी आएगा।
तब-तब बलिदानी उन्हें, तुम्हें गद्दार पुकारा जाएगा।
सारा अर्जित-संचित तेरा, क्षण भर में ही लुट जाएगा।
लेकिन अपयश का यह कलंक, तुमसे न कभी मिट पाएगा।”

“अब छोड़ो वाद-विवाद व्यर्थ, ही, इस पर समय गँवाना क्यों?
जिस पथ का कोई लक्ष्य न हो, उस पथ पर आगे जाना क्यों?
तुमको अंग्रेजों के टुकड़ों, का, भारी कर्ज चुकाना है।
मुझको भी अपने संकल्पों, पर मिटने का सुख पाना है।”

“दो मुझे न कोई भीख अतः, अपनी बंदूक उठाओ तुम।
मैं अपने पथ पर बढ़ता हूँ, अपना कर्तव्य निभाओ तुम।
माँ गंगा की है शपथ नहीं, तिल भर भी पीछे जाऊँगा।
यदि तुझको पीठ दिखाऊँगा, तो मुख किसको दिखलाऊँगा।

“मैं नहीं कलंक लगाऊँगा, रणवीरों की परिपाटी पर।
बंदूक उठा तहसीलदार!आ लगा निशाना छाती पर।
तुझ में मुझ में क्या अंतर है, यह जग को आज बताऊँगा।
तू जान बचाकर भागा था, मैं जान लुटा कर जाऊँगा।”

यह कह कर भारत माता की, जयकार लगा चल पड़ा वीर।
यह देख दामिनी के मिस ज्यों, नभ तड़प गया होकर अधीर।
किटकिटा कुरैशी गरज उठा, संग बंदूकें गरजने लगीं।
सन-सन करती गोलियाँ हृदय, शिवपूजन का बींधने लगीं।

मन में नव अरुणोदय-नवयुग, के, स्वागत का अरमान लिए।
गिर गया वीर मुखमंडल पर, संतोषपूर्ण मुस्कान लिए।
बुझती आँखों के सम्मुख थी, श्यामा की धुँधली सी छाया।
नयनों में आँसू लिए द्वार, पर, खड़ी वही कंचन काया।

छाती से चिपटा शिशु अब भी, बेसुध हो सोया था ऐसे।
वसुधा की गोदी में आकर, अंबरमणि सोया हो जैसे।
हो गए शांत अधखुले नयन, बिन बोले ही सब कुछ कहकर।
छूटकर हाथ से लहराता, मैं गिरा तड़प उसके ऊपर।

भींगता रक्त में लिपट गया, उसके तन से होकर निहाल।
रह गए कहाँ अब तीन रंग, हो गया पूर्णतः लाल-लाल।
नूतन भूमिका निभाने को, पाने को पुनः स्वरूप नया।
जीवन का मूल्य चुकाकर वह, निज चिर यात्रा पर निकल गया।

तब से ही यह तहसील भवन, तीर्थों सा आदर पाता है।
जो भी इस पथ से जाता है, वह सादर शीश झुकाता है।
इसलिए कि जहाँ जवानी निज, गौरव पर प्राण लुटाती है।
सौभाग्यवती वह वसुंधरा, शत बार धन्य हो जाती है।

इसलिए कि राष्ट्रधर्म पर जो, हँस-हँसकर शीश कटाते हैं।
वे बलिदानी इस धरती के, रहने तक पूजे जाते हैं।
उन वीरों की ही यशगाथा, मैं भी इतराकर गाता हूँ।
उनके प्रताप से ही सगर्व, नभमंडल में लहराता हूँ।

जब तक यह वीरप्रसू धरती, ऐसे सपूत जन्माएगी।
जब तलक जवानी बलिदानों, की, पावन रीति निभाएगी।
तब तक नभ में सीना ताने, सूरज से आँख मिलाऊँगा।
मैं इसी प्रकार अनंत काल तक, साभिमान लहराऊँगा।।

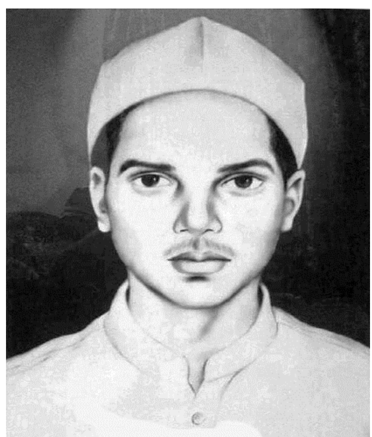
।। समाप्त ।।



अमर बलिदानी
डॉ. शिवपूजन राय



अमर बलिदानी
राजा राय



अमर बलिदानी
वंशनारायण राय

चित्र साभार श्री चंदन राय द्वारा

"डॉ. शिवपूजन राय तथा इस गाँव के अन्य नौजवानों ने न केवल भारतीय स्वतंत्रता के लिए शहादत दी बल्कि गाँधी जी की अहिंसा को भी साकार किया, वरना गाँधी जी की अहिंसा विधवा हो गई होती।"

– अष्ट बलिदानियों को श्रद्धांजलि देने शेरपुर आए पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्द।

(डॉ. मांधाता राय द्वारा संपादित 'मुहम्मदाबाद तहसील कांड-अगस्त क्रांति का शिखर' नामक पुस्तक से साभार)

‘अष्ट बलिदानी’ युवा कवि श्री संजीव कुमार त्यागी का आठ सर्गों में निबद्ध खंडकाव्य है। एक ऐसा खंडकाव्य जिसमें 1942 ई० की महान क्रान्ति में गाजीपुर जनपद के आठ देशभक्त वीरों के प्राणोत्सर्ग के ऐतिहासिक आख्यान का छंदबद्ध काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत है। वास्तविक घटना पर आधारित यह वर्णन अत्यंत सजीव, रोमांचक और जीवंत बन पड़ा है। इस काव्य की पाण्डुलिपि से गुज़रते हुए मैंने बराबर यह अनुभव किया है कि श्री त्यागी को नैसर्गिक-सर्जनात्मक काव्य-प्रतिभा प्राप्त है। प्रस्तुत काव्य उनकी उसी प्रतिभा का सहज-मौलिक प्रतिफलन है। श्री त्यागी ने खंडकाव्यों की काव्यशास्त्रीय परंपरा का सम्यक निर्वहन करते हुए अपनी इस कृति में दोहा, लावणी और सार जैसे विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया है। कई अलंकारों सहित इसमें शृंगार रस के साथ वीर रस का अद्भुत परिपाक देखा जा सकता है। कवि ने कई स्थलों पर प्रकृति की अनोखी छटा को भी रूपायित किया है। इस सन्दर्भ का एक उदाहरण पर्याप्त होगा-

नव किशोर दिनकर करता था, नभ में मनहर क्रीड़ाएँ।
उस पर वारी-वारी जातीं, कृष्ण-धवल घन-बालाएँ।
कभी किसी के श्यामाम्बर से, निज आनन ढक लेता था,
फिर झीना आँचल सरकाकर, महि का मुख तक लेता था।।

रस-छन्द-अलंकार और प्रकृति-चित्रण की भाँति कवि ने अपनी इस कृति में स्वाधीनता और देशभक्ति विषयक विमर्श भी विन्यस्त किया है। उसकी इस रचनात्मक पहल से यह काव्य कृति और विशिष्ट बन गई है। त्यागी जी की भाषिक क्षमता समृद्ध और वर्णन-शैली मोहक है। यही कारण है कि इसका पाठकीय आस्वाद बेजोड़ बन गया है। श्री संजीव कुमार त्यागी वर्तमान प्रचलित एवं मान्य हिन्दी काव्यधारा-छंदमुक्त कविता-लेखन- के समानांतर महाकवियों की उस सृजनधर्मी परम्परा के विरल कवि हैं जिन्होंने अपनी प्रखर मेधा से हिन्दी-साहित्य को अनेकानेक स्मरणीय महाकाव्यों- खण्डकाव्यों से समृद्ध किया है। मुझे विश्वास है कि कवि की यह कृति राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त की 'यशोधरा', महाकवि 'दिनकर' की 'रश्मिरथी' और कविवर श्याम नारायण पाण्डेय के 'जय हनुमान' की यशस्विनी परम्परा के पल्लवन के रूप में समाहत होगी। मंगलमस्तु!

- डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय

Sarv Bhasha Trust
011-3501-3521, 9205461387
Buy this book from
www.sarvbhasha.in

ISBN 978-81-19208-19-7
9 788119 208197
₹180 (अजिल्द)
₹260 (सजिल्द)

